इकाईः 20 कैवल्य की अवधारणा एवं कैवल्य प्राप्ति के उपाय

20.1 प्रस्तावना

कैवल्य भारतीय दर्शन एवं योग साधना का एक महत्त्वपूर्ण सम्प्रत्यय है जिसे मुक्ति, मोक्ष, निर्वाण, अपवर्ग, निःश्रेयस आदि अनेक नामों से सम्बोधित किया गया है।

मोक्ष/कैवल्य का सम्बन्ध आत्मा (पुरुष) से है जो भी दर्शन आत्मा को स्वीकार करते है वे जीवन के परमपुरुषार्थ के रूप में मोक्ष या कैवल्य को अवश्य मानते हैं।

यद्यपि इसके स्वरूप व प्राप्ति के साधन के विषय में मतभेद अवश्य है किन्तु एक बात सभी दर्शनों में समान है कि मोक्ष दुखों से आत्यन्तिक निवृत्ति की अवस्था है मोक्ष के बाद पुनर्जन्म नहीं होता। मोक्ष जीवन का परम लक्ष्य है।

योग दर्शन में मोक्ष को कैवल्य कहा गया है। 'केवली भावं कैवल्यम्' अर्थात् जब पुरुष केवल रूप में अर्थात् अपने वास्तविक स्वरूप में अवस्थित होता है तो वह अवस्था कैवल्य कहलाती है। इस अवस्था की प्राप्ति चित्त के शुद्ध निर्मल होकर अज्ञान से निवृत्त होने पर ही सम्भव है जिसके लिए अनेकों प्रकार के योग मार्ग बताये गये हैं। प्रस्तुत इकाई में कैवल्य सम्बन्धी इन्ही सब विचारो की विश्लेषण व व्याख्या की गई है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप सांख्य एवं योग दर्शन सहित अन्य भारतीय दर्शनों में कैवल्य एवं उसकी प्राप्ति के उपायों से ठीक ढंग से अवगत हो सकेगे जो दर्शन में योग एवं योग में दर्शन सम्बन्धी आपकी समझ को विकसित करने में सहायक सिद्ध होगा।

20.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप यह बता सकेंगे कि–

☞ कैवल्य किसे कहते हैं?

☞ कैवल्य जीवन का परम पुरुषार्थ क्यों है?

☞ जीवन के दुखो का मूल कारण क्या है?

☞ वह कौन सा उपाय है जिससे हम दुखों से बचकर सुख शान्ति और सन्तोष की जिन्दगी जी सके।

☞ भौतिक आध्यात्मिक किसी भी क्षेत्र में उन्नति के लिए साधना के महत्त्व को समझ सकेंगे।

कैवल्य प्राप्ति के यौगिक उपायों से परिचित हो सकेंगे।

20.3 कैवल्य की अवधारणा

20.3.1 जीवन का परम पुरुषार्थः कैवल्य

भारतीय संस्कृति एवं दर्शन में जीवन के चार आदर्श सा उद्देश्य हैं जिन्हें पुरुषार्थ कहा जाता है और वे हैं– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। मोक्ष मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य व परम पुरुषार्थ है। चार्वाक को छोड़कर प्रायः सभी भारतीय दर्शन आस्तिक हो या नास्तिक,

सभी मोक्ष में विश्वास करते हैं और इसे ही जीवन का चरम लक्ष्य और परम आदर्श–अन्तिम पुरुषार्थ मानते हैं। यद्यपि सभी दर्शनों में मोक्ष के स्वरूप एवं उसकी प्राप्ति के साधनों को लेकर आपस में मतभेद है फिर भी मोक्ष की सामान्य धारणा से प्रायः सभी की आस्था है। मोक्ष की अत्यधिक प्रधानता रहने के कारण ही कुछ विद्वान भारतीय दर्शन को मोक्ष दर्शन मोक्ष शास्त्र भी कहते हैं।

भारत में दार्शनिक चिंतन का लक्ष्य जीवन की समस्याओं का समाधान भी है। यहाँ दर्शन सिर्फ बौद्धिक जिज्ञासा की शांति या मानसिक कौतूहल की निवृत्ति न होकर जीवन की समस्याओं को सुलझाना है। अतः भारतीय दर्शन का जीवन से गहरा सम्बन्ध है। इसलिए डॉ॰ राधाकृष्ण ने कहा है कि 'भारत में दर्शन जीवन के लिए है'। प्रो॰ मैक्समूलर के शब्दों में ''भारत में दर्शन बौद्धिक ज्ञान के लिए नहीं बल्कि सर्वोच्च लक्ष्य के लिए था। जिसके लिए मनुष्य इस जीवन में प्रयत्नशील रह सकता है'' और वह सर्वोच्च लक्ष्य है मोक्ष जिसे भारतीय दर्शन में मोक्ष, मुक्ति, निर्वाण, निःश्रेयस, अपवर्ग या कैवल्य आदि अनेक नामों से सम्बोधित किया गया है।

20.3.2 कैवल्य या मोक्ष क्या है?

मोक्ष का सामान्य अर्थ दुखों का विनाश है। दुखों के आत्यन्तिक निवृत्ति को ही मोक्ष या कैवल्य कहते हैं। प्रायः सभी भारतीय दर्शन यह मानते हैं कि संसार दुखमय है। दुखों से भरा हुआ है। किन्तु ये दुख अनायास नहीं है, इन दुखों का कारण है। उस कारण को समाप्त करके हम सभी प्रकार के दुखों से मुक्त हो सकते है। दुख मुक्ति की यह अवस्था ही मोक्ष है, मुक्ति है, निर्वात है, अपवर्ग है, कैवल्य है। और यही जीवन का अन्तिम लक्ष्य है। जब तक इस लक्ष्य की प्राप्ति नही हो जाती तब तक संसार में जन्म मरण का चक्र चलता रहेगा और जीव दुख भोगता रहेगा। भारतीय दर्शन सिर्फ मोक्ष की सैद्धान्तिक चर्चा ही नहीं करता बल्कि उसकी प्राप्ति के व्यावहारिक उपाय भी बताता है इसीलिए भारतीय दर्शन कोरा सैद्धान्तिक दर्शन न होकर एक व्यावहारिक दर्शन है। यद्यपि विभिन्न दर्शनों में मोक्ष के स्वरूप एवं उसके प्राप्ति के उपाय को लेकर मतेभेद है किन्तु चार्वाक को छोड़कर सभी भारतीय दर्शन इस बात में एक मत हैं कि–

1. मोक्ष दुखों की पूर्ण निवृत्ति है।
2. यही जीवन का अन्तिम लक्ष्य है।
3. इस लक्ष्य को इसी जीवन में पाया जा सकता है।
4. मोक्ष जन्म मरण चक्र का समाप्त हो जाना है।

मोक्ष का विचार बन्धन से जुड़ा हुआ है। आत्मा का सांसारिक दुखों से ग्रस्त होना ही उसका बन्धन है और इन दुखों से सर्वथा मुक्त हो जाना मोक्ष। व्यावहारिक जीवन में प्रायः हर कोई कहता है कि मैं दुखी हुँ, मुझे दुख है। यहाँ प्रश्न यह है कि 'मैं' का अर्थ क्या है? दुख क्या है? दुख क्यों है दुख का अन्त सम्भव है या नहीं? इन सब प्रश्नों पर भारतीय दर्शन में गहराई से विचार किया गया है।

चार्वाक को छोडकर प्रायः सभी भारतीय दर्शनों में 'मैं' का अर्थ आत्म तत्व से है जिसे आत्मा या पुरुष कहा गया है यह आत्मा सुख दुख से परे है फिर भी सुख दुख का

अनुभव करती है। इसका अनुभव का कारण अज्ञान या अविवेक है जिसके प्रभाव से आत्म का अनात्म से संयोग हो जाता है फलस्वरूप त्रिगुणातीत आत्म तत्व त्रिगुणात्मक अनात्म तत्व को ही अपना स्वरूप समझने लगता है उदाहरण के लिए 'मैं' विशुद्ध आत्म तत्व (पुरुष) है किन्तु व्यवहार में अज्ञान वश व्यक्ति अपने शरीर मन, बुद्धि को ही 'मैं' समझने लगता है और इनसे सम्बन्ध वश सुख–दुख को भोगता है। यह सम्बन्ध ही बन्धन है और इस सम्बन्ध से मुक्ति (छुटकारा पाना) ही मोक्ष या कैवल्य। बन्धन का कारण अज्ञान है। इसलिए मोक्ष का उपाय इस अज्ञान का नाश करना है जो ज्ञान से सम्भव है इसीलिए कहा गया है– **ज्ञानात् मुक्तिः।**

अधिकांश भारतीय दर्शन बन्धन और मोक्ष सम्बन्धी उपर्युक्त विचार से सहमत है। यदि कोई अपवाद है तो वह है– चार्वाक दर्शन।

चार्वाक दर्शन घोर नास्तिक एवं भौतिक वादी दर्शन है। इसका मानना है कि न तो कोई ईश्वर है न ही आत्मा। बन्धन और मोक्ष की कल्पना भी निरर्थक है। यह शरीर ही आत्मा है और शरीर का विनाश ही मोक्ष क्योंकि शरीर का नाश होते ही सभी दुखों का नाश हो जाता है। इस जीवन के बाद कोई दूसरा जन्म नहीं होता, कोई स्वर्ग नरक नहीं होता। जीवन का उद्देश्य है सुखों का भोग करना। चार्वाक का मूल मत है–

यावज्जीवते् सुखं जीवेत, ऋणं कृत्वा घृतम् पीवेत।

भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनम्ः कुतः।।

अर्थात्– जब तक जियों सुख से जिओं, कर्ज लेकर भी धी पीओ (यानी मौज–मस्ती करो)। एक दिन यह शरीर भस्म हो जायेगा फिर पुनः लौट कर कहाँ आना है। यानी पुनर्जन्म नहीं होगा।

इस प्रकार चार्वाक दर्शन तो जीवित रहते दुखों से पूर्ण छुटकारा या पूर्ण विनाश सम्भव ही नहीं मानता। जब तक जीवन है सुख दुख लगे ही रहेंगे। दुख के भय से सुख का भी त्याग कर देना यानी मोक्ष की कल्पना में तपस्या आदि करना मूर्खता है–

त्याजयं सुखं विषय संगम जन्म पुंसा।

दुःखोपसृष्टमिति मूर्ख विचारणैषा।। (सर्वदर्शन संग्रह)

जंगली पशुओं (मृग) के भय से क्या खेती करना छोड़ देना चाहिए।

न हि मृगाः सन्तीति शालयों नोप्यन्ते।

जीवन के चार पुरुषार्थों में से चार्वाक दर्शन केवल दो ही पुरुषार्थ को मान्यता देता है– अर्थ और काम। वह धर्म और मोक्ष को नहीं मानता। इसलिए चार्वाक दर्शन में मोक्ष एवं मोक्ष मार्ग पर विचार करना निरर्थक है। चार्वाक का विचार न तो दार्शनिक दृष्टि से उपयुक्त है न ही व्यावहारिक सामाजिक दृष्टिकोण से। यदि व्यक्ति अपने निहित सुख तक ही सोचे तो ऐसे घोर स्वार्थी समाज में किसका भला हो सकता है? आज समाज में बढ़ रहे अपराध बलात्कार, भ्रष्टाचार घोटाले जैसी घटनाएं नैतिक मूल्यों के ह्रास का ही परिणाम है जिसका समर्थन चार्वाक विचार धारा से होता है। जबकि मोक्ष या कैवल्य के आदर्श का

मूल आधार ही नैतिकता है। योग का प्रारम्भिक चरण ही यम–नियम का पालन है। यही कारण है कि मोक्ष को मानने वाले सभी दर्शन सदाचार पर बल देते हैं।

चार्वाक के अतिरिक्त अन्य सभी भारतीय दर्शनों में कैवल्य या मोक्ष को जीवन का परम पुरुषार्थ मानते हुए इसे प्राप्त करने के उपाय बताये गये हैं और इस हेतु किसी न किसी रूप में योग साधना पर बल देते है।

20.3.3 भारतीय दर्शन में कैवल्य

वेद में आस्था रखने वाले आस्तिक एवं वेद विरोधी नास्तिक, दोनों प्रकार के भारतीय दर्शन (चार्वाक को छोड़कर) मोक्ष को स्वीकार करते हैं और अपने–अपने दृष्टिकोण से कैवल्य या मोक्ष के स्वरूप एवं साधनो को जन कल्याण हेतु बताते हैं।

नास्तिक कहे जाने वाले **बौद्ध दर्शन** में भी मोक्ष की अवधारणा है और मोक्ष को निर्वाण कहा गया है। निर्वाण का अर्थ है दुखों से मुक्ति। अविद्या का नष्ट हो जाना, समस्त पाप कर्मो का समाप्त हो जाना, तृष्णा की अग्नि का बुझ जाना और पुनर्जन्म से छुटकारा पा जाना ही 'निर्वाण की अवस्था' है। निर्वाण प्राप्त व्यक्ति को बौद्ध धर्म में अर्हत या तथागत कहा गया है। बौद्ध दर्शन का चतुर्थ आर्य सत्य (दुख निरोध मार्ग या अष्टांगिक मार्ग) निर्वाण प्राप्ति का यौगिक उपाय है–

''शील–समाधि–प्रज्ञा रूपी तीन स्कन्धों वाले इस स्पष्ट अष्टांगिक अविनाशी और आर्य मार्ग पर आरूढ़ होकर मनुष्य दुख के हेतु रूप दोषों को छोड़ता है और उस अत्यन्त मंगलमय निर्वाण पद को प्राप्त करता है।'' (सौन्दरनंद 16/37)

जैन दर्शन भी मोक्ष के आदर्श को स्वीकार करते हुए इसे जीवन का चरम लक्ष्य कहते है। मोक्ष का अर्थ है आत्मा का अपनी वास्तविक स्वरूप की प्राप्ति। मोक्षावस्था में जीवात्मा दुख के कारणों कषाय आदि से मुक्त होकर पुनः अपने अनन्त चतुष्टय स्वरूप (अनन्त ज्ञान, अनन्त शक्ति, अनन्त दर्शन और अनन्त आनन्द) को प्राप्त कर लेती है। मोक्ष की प्राप्ति हेतु सम्यक् दर्शन सम्यक ज्ञान और सम्यक् चरित्र का पालन आवश्यक है–

सम्यक दर्शन–ज्ञान–चारित्राणि मोक्ष मार्गः। (उमास्वामी, तत्वार्थ अधिगम सूत्र 2.3)

जैन दर्शन में सम्यक दर्शन ज्ञान और चरित्र को त्रिरत्न कहते हैं। सम्यक चरित्र के अन्तर्गत पंचमहाव्रत का पालन अनिवार्य है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रहमचर्य ही पंचमहाव्रत हैं। इन्हें ही बौद्ध दर्शन में पंचशील तथा योग दर्शन मे यम कहा गया है जिनका पालन दुखों से मुक्ति हेतु आवश्यक है।

अन्य भारतीय दर्शनों की भाँति **न्याय वैशेषिक** दर्शन का उद्देश्य भी मनुष्य को मानव जीवन का परम श्रेय मोक्ष की उपलब्धि कराना है न्याय और वैशेषिक दोनों दर्शन समान तन्त्र कहे जाते हैं। क्योंकि अनेक बातो में इनमें समान मत है न्याय वैशेषिक में मोक्ष को अपवर्ग तथा निःश्रेयस भी कहा गया है।

न्याय एवं वैशेषिक दर्शन मोक्ष को दुखों की आत्यन्तिक निवृत्ति की अवस्था मानते हैं, महर्षि गौतम कहते हैं–

तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः (न्याय सूत्र 1/1/22)

किन्तु न्याय वैशेषिक दर्शन में मोक्ष को आनन्द की अवस्था नहीं माना गया है। न्याय वैशेषिक के अनुसार मोक्षावस्था में आत्मा अचेतन हो जाती है क्योंकि चेतना आत्मा का आगन्तुक गुण है। आत्मा में चेतना तब आती है जब आत्मा का सम्बन्ध शरीर से होता है। मोक्षावस्था में आत्मा शरीर से अलग हो जाती है। इसलिए मोक्षावस्था अचेतन अवस्था है। न्याय वैशेषिक दर्शन में परम निःश्रेयस की प्राप्ति मृत्यु के बाद ही मानी गई है। न्याय वैशेषिक दर्शन केवल विदेह मुक्ति को ही मानते हैं। जीवन मुक्ति (यानी जीवित रहते ही मोक्ष प्राप्त कर लेना) जिसे महात्मा बुद्ध, शंकराचार्य सांख्य एवं योग दर्शन मानते हैं। न्याय वैशेषिक दर्शन को मान्य नहीं है। अपवर्ग या मोक्ष की प्राप्ति तत्वज्ञान से ही सम्भव है जिसके लिए श्रवण, मनन और निदिध्यासन की साधना आवश्यक है।

मीमांसा दर्शन को मोक्ष विचार न्याय–वैशेषिक के लगभग समान हैं। मोक्ष दुख के अभाव की अवस्था है। मोक्षावस्था में आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त कर लेती है, जो अचेतन है। इसलिए मोक्ष में सुख–दुख–आनन्द का अभाव है। इस अवस्था में आत्मा में ज्ञान का भी अभाव रहता है। मीमासा दर्शन में विदेह मुक्ति को ही माना गया है, जीवन मुक्ति को नहीं। मोक्ष की प्राप्ति के लिए ज्ञान और कर्म दोनों आवश्यक हैं।

शंकराचार्य के **अद्वैतवेदान्त में** भी मोक्ष की प्राप्ति ही जीवन का परम पुरुषार्थ है। शंकराचार्य आत्मा और ब्रह्म को अद्वैत मानते हैं। आत्मा ही ब्रह्म है इसलिए ब्रह्म रूप में वह दुखों से सर्वथा परे है किन्तु अज्ञान वश अपने स्वरूप को भूलकर सुख दुख के चक्र में भ्रमण करती रहती है इसलिए शंकराचार्य के अनुसार–

मोक्ष का अर्थ है आत्मा का अपने वास्तविक स्वरूप में अवस्थित हो जाना।

स्वात्मन्यमवस्थानम् मोक्षः। (तैतिरीय उपनिषद भाष्य 1/11)

पुनः ब्रह्म भाव ही मोक्ष है–

ब्रहम भावश्च मोक्षः।

ब्रह्म और मोक्षावस्था एक ही है–

ब्रह्म एव ही मुक्त्यावस्था।

अज्ञान या अविद्या के कारण ही जीवात्मा अपने मुक्तावस्थाः ब्रह्मस्वरूप को भूलकर दुख भोगती है इसलिए इस अज्ञान से मुक्ति ही मोक्ष है–

अविद्याः निवृत्तिः एव मोक्षः।

मोक्ष के दो रूप हैं– 1. जीवन्मुक्ति और 2. विदेह मुक्ति। शंकराचार्य इन दोनों रूपों को स्वीकार करते है। जीवित रहते ही ज्ञान प्राप्त कर मुक्त हो जाना–जीवन मुक्ति है। विदेह मुक्ति मृत्यु के बाद उपलब्ध होती है।

मोक्ष प्राप्ति का मार्ग ज्ञान योग साधना है। ज्ञान से ही मुक्ति होती है–

ज्ञानात् एव मुक्तिः

बिना ज्ञान के मुक्ति सम्भव नहीं है–

ऋते ज्ञानात् न मुक्तिः।

मोक्ष की प्राप्ति के लिए साधन चतुष्टय आवश्यक है– 1. विवेक 2. वैराग्य 3. षड् सम्पत्ति (शम, दम, श्रद्धा, समाधान उपरति एवं तितीक्षा) और 4. मुमुक्षुत्वं, ये चार साधन चतुष्टय हैं–

नित्यानित्यवस्तुविवेकः।

इहमुत्रार्थ भोग विरागः।

शमदमादिषट्क सम्पत्तिः।

मुमुक्षुत्वं चेति।। (शंकराचार्य तत्वबोध)

इन चार साधनों से युक्त साधक को श्रवण, मनन और निदिध्यासन से ज्ञान की प्राप्ति होती है।

शंकराचार्य के अनुसार आत्मा वस्तुतः मुक्त है। मोक्ष अपने आत्म स्वरूप का ज्ञान होना है इसलिए मोक्ष कोई नई चीज नहीं है अपितु जो पहले से प्राप्त था उसी की पुनः प्राप्ति यानी ज्ञान होना है। इसलिए शंकर ने मोक्ष को 'प्राप्तस्व प्राप्ति' कहा है। शंकर ने बन्धन को प्रतीति मात्र माना है।

सांख्य एवं योग दर्शन में मोक्ष का अर्थ तीन प्रकार के दुखों से छुटकारा पाना है। बन्धन का कारण अविवेक है। पुरुष प्रकृति एवं उसकी विकृतियों से भिन्न है परन्तु अज्ञान वश पुरुष इन्हे अपना स्वरूप समझने लगता है और दुख भोगता, जन्म–मरण के चक्र में धूमता है। मोक्ष का अर्थ है– पुरुष का अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान जिससे जन्म–मरण चक्र एवं दुखों से निवृत्ति मिल जाती है। इस विवेक ज्ञान की प्राप्ति योग साधना से सम्भव है। इस सम्बन्ध में विस्तृत अध्ययन विद्यार्थी अगले उपखण्ड में करेंगे–

सांख्य दर्शन के अनुसार कैवल्य (मोक्ष) तीनों प्रकार के दुखों की आत्यन्तिक निवृत्ति मात्र है–

आत्यन्तिको दुःखत्रयाभावः कैवल्यम्।

इसलिए सांख्य–योग दर्शन में कैवल्य के स्वरूप को ठीक से समझने से पूर्व आवश्यक है कि दुखत्रय को पहले समझा जाय। इसलिए अगले उपखण्ड में दुखत्रय की विवेचना की जा रही है।

20.3.4 त्रिविध दुखः–

संसार दुखमय है। जीवन दुखों से भरा हुआ है। जन्म मृत्यु, बुढ़ापा रोग प्रिय वस्तुओं का वियोग अप्रिय का संयोग ये सभी दुख उत्पन्न करते हैं। संसार की सभी वस्तुएं दुख देने वाली हैं। जिन्हें हम सुखात्मक समझते है वे भी बाद में दुख ही देती हैं। किन्तु ये दुख शाश्वत नहीं है इनका नाश सम्भव है। दुखों का कारण है और इस कारण को ही दूर करके दुख को दूर किया जा सकता है। प्रायः सभी भारतीय दार्शनिकों ने इस सत्य का अनुभव किया और दुखों को दूर करने के लिए विभिन्न उपाय बताये हैं।

सांख्य एवं योग दर्शन भी दुख सम्बन्धी उपर्युक्त मत से सहमत हैं और इन दुखों का पूर्ण विनाश ही जीवन का लक्ष्य मानते हैं जिसे मोक्ष या कैवल्य कहते हैं–

आत्यन्तिको दुःखत्रया भावः कैवल्यम्।

सांख्य दर्शन में दुखों की गम्भीर विवेचना करते हुए दुख के तीन प्रकार बताए गये है–

आध्यात्मिक दुख, आधिभौतिक दुख और अधिदैविक दुख।

1. आध्यात्मिक दुखः– आध्यात्मिक दुख उस दुख को कहा जाता है जो मनुष्य के शरीर और मन के कारण उत्पन्न होते हैं यानी शारीरिक और मानसिक दुख ही आध्यात्मिक दुख हैं। वात, पित्त, कफ आदि विकारों से उत्पन्न होने वाले (त्रिदोष जन्य) दुख शारीरिक दुख है जैसे ज्वर, सिर दर्द, भूख आदि तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेष आदि से उत्पन्न होने वाले कष्ट मानसिक दुख हैं। इन सभी दुखों को आध्यात्मिक दुख कहते हैं।

2. आधिभौतिक दुखः– अधिभौतिक दुख वह है जो वाहय भौतिक कारणों से उत्पन्न होते हैं। किसी अन्य व्यक्ति, पशु, पक्षी, सर्प, बिच्छू, कॉटा गड़ना, तीर चुभना, ठोकर लग जाना आदि कारणों से होने वाला दुख आधिभौतिक दुख है।

3. आधिदैविक दुखः– आधिदैविक दुख वह है जो अलौकिक कारणों से उत्पन्न होता है। जैसे ग्रह, नक्षत्र, भूत प्रेत दैवी प्रकोप आदि से होने वाले दुख आधिदैविक दुख कहलाते है।

सांख्य दर्शन के अनुसार सभी मनुष्य इन तीन प्रकार के दुखों से पीड़ित हैं और इनसे छुटकारा पाना चाहते हैं। चिकित्सा विज्ञान वैद्य आदि के द्वारा इन दुखों से अस्थायी छुटकारा ही मिल पाता है; हमेशा–हमेशा के लिए नहीं। जबकि मानव इन दुखों से हमेशा के लिए मुक्ति पाना चाहता है। मनुष्य केवल वर्तमान के दुखों से ही नहीं बल्कि भविष्य में होने वाले दुखों से भी बचना चाहता है। चिकित्सा आदि के उपाय इस हेतु असमर्थ हैं। यदि कोई यह कहे कि मृत्यु के बाद तो मनुष्य इन सांसारिक दुखों से स्वयं मुक्त हो जाता है तो यहाँ सांख्य दर्शन का कहना है कि मृत्यु के बाद भी जीवन समाप्त नहीं होता। पुनर्जन्म द्वारा जीवात्मा शरीर बदल कर पुनः इस संसार में आ जाती है और दुख भोगती है। दुखों का पूर्ण विनाश तो कैवल्य या मोक्ष से ही सम्भव है। कैवल्य का अर्थ ही है त्रिविध दुखों की आत्यन्तिक निवृत्ति। कैवल्य या मोक्ष ही परम अपवर्ग है, यही परम पुरुषार्थ है।

दुख का कारण अज्ञानः–

सभी प्रकार के दुखों का मूल कारण अविवेक या अज्ञान है। अज्ञान का अर्थ है अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान न होना। वास्तव में जो हम हैं उसे भूलकर जो हम नहीं हैं उसकों अपना स्वरूप मान लेना अविवेक या अज्ञान कहलाता है।

शुद्ध चैतन्य स्वरूप पुरुष शरीर मन बुद्धि अंहकार आदि से भिन्न है किन्तु अविवेक के कारण ही वह इन्ही को अपना स्वरूप समझ लेता है और सुख–दुख की अनुभूति स्वयं करने लगता है। इस प्रकार दुख का कारण यह अज्ञान ही है।

अज्ञान से बन्धनः–

साख्य दर्शन के अनुसार भी दुखों का मूलकारण अज्ञान है इसलिए दुखों से निवृत्ति अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति ज्ञान से सम्भव है। इसके विपरीत अज्ञान से बन्धन की प्राप्ति होती है।

ज्ञानेन चापवर्गः विपर्ययाष्यिते बन्धः।

अब प्रश्न यह है कि बन्धन क्या है?

सूक्ष्म शरीर के साथ पुरुष का संयोग ही बन्धन है और बन्धन का कारण अविवेक है। पुरुष (आत्मा) स्वभावतः शुद्ध चैतन्य स्वरूप ज्ञाता मात्र है। वह प्रकृति एवं उसके विकारों– बुद्धि, अंहकार, मन, इन्द्रिय, शरीर आदि से पूर्णतः भिन्न है किन्तु वह अविवेक (अज्ञान) के कारण अनात्म वस्तुओं से अपना तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित करके अपने वास्तविक स्वरूप को भूल जाता है और उन्हें ही अपना स्वरूप समझ लेता है। पुरुष का यह मिथ्या सम्बन्ध ही उसका बन्धन है और दुखानुभूति का कारण है। इस प्रकार बन्धन अविवेक और दुख के बीच की कड़ी है।

बन्धन अवास्तविक है–

यद्यपि अज्ञान (अविवेक) के कारण आत्मा बन्धन ग्रस्त होकर दुख भोगती है किन्तु आत्मा या पुरुष का यह बन्धन वास्तविक नहीं है, एक भ्रम है। बन्धन एक प्रतीति है। सांख्य दार्शनिक कहते है कि पुरुष वस्तुतः बन्धन में पड़ता ही नहीं है। पुरुष तो शुद्ध ज्ञानस्वरूप नित्य मुक्त तथा बंधन रहित है। वह प्रकृति के व्यापारों का द्रष्टा मात्र है, स्वभावतः वह अकर्ता है। जो पुरुष मुक्त स्वभाव का है वह बन्धन ग्रस्त कैसे हो सकता है? इसलिए पुरुष का बन्धन में पड़ना भी उसका भ्रम है। जिस प्रकार से सफेद स्फटिक लाल फूल की निकटता से लाल दिखाई देता है उसी प्रकार नित्य मुक्त पुरुष (आत्मा) मन बुद्धि अहंकार की निकटता वश बुद्धि का दुख की छाया (परछाई) ग्रहण करने से बन्धन ग्रस्त प्रतीत होता है।

ज्ञान से अपवर्ग या कैवल्य

दुख दायी बन्धन का नाश तभी सम्भव है जब पुरुष वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति करता है। बन्धन का कारण अज्ञान है। अज्ञान का नाश (अन्त) ज्ञान या विवेक से ही सम्भव है। जिस प्रकार अंधकार का नाश प्रकाश से होता है उसी प्रकार अज्ञान का नाश ज्ञान से होता है इसलिए सांख्य दर्शन में ज्ञान को मोक्ष का साधन माना गया है जिसे कैवल्य या अपवर्ग भी कहते हैं। ईश्वर कृष्ण का कहना है कि–

ज्ञानेन चापवर्गः विपर्यायाष्यिते बन्धः

यहाँ ज्ञान का अर्थ विवके ज्ञान या सम्यक् ज्ञान से है। पुरुष और प्रकृति के भेद के ज्ञान को विवेक ज्ञान कहा जाता है परन्तु इस ज्ञान को केवल मन से जान लेना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि इस ज्ञान की साक्षात् अनुभूति भी परम आवश्यक है। विवेक ज्ञान के द्वारा पुरुष को इस बात की साक्षात् अनुभूति होनी चाहिए कि वह शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धि से भिन्न शुद्ध चेतन तत्व है। जब पुरुष को यह अनुभूति हो जाय कि मैं प्रकृति से परे आत्म तत्व हूँ मैं अनात्म नहीं हूँ मेरा कुछ नहीं है मैं तो दुखों से मुक्त शाश्वत अमर सत्ता हूँ तो वह मोक्ष की प्राप्ति कर लेता है। जिस प्रकार रस्सी में साप का भ्रम तभी दूर हो सकता है जब रस्सी का प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाय उसी प्रकार पुरुष या आत्मा का यह भ्रम कि मैं शरीर, इन्द्रिय और बुद्धि से युक्त हूँ तभी दूर हो सकता है जब पुरुष को इनसे अपनी विभिन्नता की साक्षात् अनुभूति हो जाय। इस अनुभूति को पाने के लिए अर्थात् अपने वास्तविक स्वरूप–बोध विवेक ज्ञान के लिए पुरुष को तत्व अभ्यास तथा मनन एवं निदिध्यासन की

आवश्यकता होती है। महर्षि पंतजलि ने अपने योग दर्शन में इस हेतु अष्टांग योग आदि अनेक यौगिक उपाय भी बताये हैं जिन्हे सांख्य दर्शन भी स्वीकार करता है। इन यौगिक उपायों को आप योग दर्शन में कैवल्य प्राप्ति के यौगिक उपाय उपखण्ड के अन्तर्गत अध्ययन कर सकेगें।

20.3.5 सांख्य दर्शन में कैवल्य का स्वरूपः–

कैवल्य या मोक्ष दुखों की आत्यन्तिक निवृत्ति की अवस्था है इसीलिए कैवल्य प्राप्ति के बाद जीवात्मा के सभी प्रकार के दुख दूर हो जाते हैं। वह अपने शुद्ध चैतन्य स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाती है अर्थात् उसे अपने शुद्ध वास्तविक स्वरूप का बोध (ज्ञान) हो जाता है। सांख्य दर्शन में मोक्ष को सुख रूप नहीं माना गया है। मोक्ष त्रिगुणातीत अवस्था है इसलिए सांख्य कैवल्य को सुख दुख और आनन्द से रहित अवस्था मानता है। सांख्य के विपरीत शंकराचार्य (वेदान्त दर्शन) मोक्ष को आनन्द मय मानते है।

कैवल्य के प्रकारः–

सांख्य एवं योग दर्शन में मुक्ति या कैवल्य दो प्रकार की मानी गई है। 1. जीवन मुक्ति और 2. विदेह मुक्ति

जीवन मुक्ति का अर्थ है शरीर रहते हुए ही मोक्ष (कैवल्य) प्राप्त कर लेना अर्थात् जीवित रहते ही मुक्त हो जाना। जीव को ज्यों ही तत्व ज्ञान का अनुभव (विवेक ज्ञान) होता है अर्थात् उसे अपने वास्तविक स्वरूप का बोध हो जाता है, प्रकृति और पुरुष के भेद का ज्ञान होता है त्यों ही वह मुक्त हो जाता है। किन्तु जब तक उसके सभी प्रारब्ध कर्म समाप्त नहीं हो जाते (यानी प्रारब्ध भोग पर्यन्त तक) तब तक उसका शरीर बना रहता है किन्तु शरीर के सुख दुख उसे प्रभावित नहीं करते। वह सांसारिक जीवन में भाग लेते हुए उससे विरक्त होता है। जीवन्मुक्त व्यक्ति कर्म तो करता है किन्तु उसके द्वारा किये गये कर्म से फल का संचय नहीं होता। जिस प्रकार कुम्हार का चाक् कुम्हार के डंडे को हटा लेने के बाद भी पूर्व वेग के संस्कार के कारण कुछ समय तक घूमता रहता है और वेग समाप्त हो जाने के बाद बन्द हो जाता है उसी प्रकार जीवन मुक्त जीव का शरीर पूर्व कृत्त प्रारब्ध कर्मो के कारण चलता रहता है और प्रारब्ध कर्मो की समाप्ति के बाद शरीर भी समाप्त हो जाता है। यह विदेह मुक्ति की अवस्था है।

सम्यग् ज्ञानाधिगमाद् धर्मादीनामकारण प्राप्तौ।

तिष्ठति संस्कारवशात् चक्रभ्रमवत् धृत शरीरः।। (सांख्य कारिका, 67)

पुनश्च,

प्राप्ते शरीर भेदे चरितार्थत्वात् प्रधानविनिवृत्तौ।

ऐकान्तिकम् आत्यन्तिकम् उभयम् कैवल्यम् आप्नोति।। (सांख्य कारिका 68)

प्रारब्ध कर्मो का भोग समाप्त हो जाने के बाद जीवन्मुक्त का शरीर भी समाप्त हो जाता है और उसे विदेह मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है। जैसा कि उपर्युक्त सांख्य कारिका में कहा गया है कि शरीर नाश होने पर पुरुष के एकान्तिक (अवश्यम भावी) और आत्यान्तिक (अविनाशी) दुख त्रय का विनाश हो जाता है। यही विदेह मुक्ति या विदेह कैवल्य है। इस

अवस्था में पुरुष का स्थूल एवं सूक्ष्म सभी शरीरों से सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है। और उसे पूर्ण कैवल्य की प्राप्ति हो जाती है।

सांख्य एवं योग दर्शन की तरह शंकराचार्य अद्वैतवेदान्त दर्शन में भी मुक्ति के दोनों भेद माने गये हैं। जबकि न्याय–वैषेषिक दर्शन, सांख्य दार्शनिक विज्ञान भिक्षु एवं रामानुज (वेदान्त दर्शन) केवल विदेह मुक्ति को ही मानते हैं, जीवन्मुक्ति को नहीं। बन्धन और मोक्ष दोनों ही दशाओं में पुरुष के स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं होता। वह तो सदा शुद्ध बुद्ध नित्य मुक्त है, बन्धन और मोक्ष तो प्रतीति मात्र हैं।

20.3.6 योग दर्शन में कैवल्य का स्वरूपः–

विगत् इकाईयों के अध्ययन से आप (विद्यार्थीगण) ने यह जान लिया होगा कि योग दर्शन सांख्य का पूरक है। दोनों समान तन्त्र हैं। दोनों के तत्वमीमांसीय विचार लगभग समान हैं। योग दर्शन सांख्य के तत्वमीमांसा को स्वीकार करता है और सांख्य दर्शन योग की आचारमीमांसा से सहमत है। इन दोनों में अत्यधिक समानता के कारण ही इन्हे समान तन्त्र कहा जाता है इसीलिए कहा गया है कि वे अज्ञानी हैं जो सांख्य और योग को बिल्कुल अलग अलग दर्शन समझते हैं विद्वान वे हैं जो इन दोनों में कोई भेद नहीं देखते।

सांख्य योगो पृथक बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।

कहने का आशय यह है कि योग दर्शन की अपनी मौलिक विशेषता और उपयोगिता होते हुए भी उसकी नीवं सांख्य का दार्शनिक आधार ही है। अस्तु कैवल्य के सम्बन्ध में भी सांख्य की विचार धारा से योग दर्शन सहमत है। किन्तु जहाँ सांख्य दर्शन में कैवल्य प्राप्ति का उपाय तत्वाभास–पुरुष प्रकृति के भेद का मनन और निदिध्यासन जैसे शब्द संकेत हैं, वही महर्षि पंतजलि अपने योग सूत्र में कैवल्य प्राप्ति का व्यावहारिक उपाय बताते हैं। यदि संक्षेप में कहा जाय तो पूरा का पूरा योग सूत्र ग्रन्थ ही कैवल्यार्थ है। 'अर्थ' से प्रारम्भ हुआ योग सूत्र (अथ योगानुशासनम) कैवल्य के साथ ही 'इति' हो जाता है–

कैवल्यं स्वरूप प्रतिष्ठा वा चिति शक्तेः इति। (4–34)

कैवल्य का अर्थः–

'केवली भावं कैवल्यम्' अर्थात् जब पुरुष केवल रूप में अर्थात् कुशल रूप में अपने स्वरूप में अवस्थित होता है, उस अवस्था को कैवल्य कहते हैं। भारतीय दर्शन में मोक्ष, मुक्ति, निर्वाण, अपवर्ग कैवल्य आदि समानर्थी शब्द हैं, पर्याय हैं। मोक्ष या कैवल्य का अर्थ दैहिक, दैविक एवं भौतिक त्रितापों से अर्थात् (सभी प्रकार के दुखों से) आत्यन्तिक निवृत्ति और अपने वास्तविक स्वरूप की प्राप्ति है।

महर्षि पंतजलि ने मोक्ष के लिए कैवल्य शब्द का निर्धारण किया है। योग सूत्र में उन्होंने मुक्ति, मोक्ष या सांख्य दर्शन की तरह अपवर्ग शब्द का प्रयोग न करते हुए बार–बार कैवल्य शब्द का ही प्रयोग किया है। कैवल्य शब्द मोक्ष और अपवर्ग का पर्यायवाची होते हुए भी इनसे कुछ विशिष्ट अर्थ अपने में संजोए हुए है। कैवल्य का शब्दार्थ है केवल वही होना अर्थात् आत्मा या पुरुष अपने आप में हो (अपने शुद्ध स्वरूप में अवस्थित हो) और किसी के साथ उसका सम्बन्ध न हो। मुक्ति, मोक्ष, अपवर्ग आदि का विशेष मन्तव्य दुख निवृत्ति पर है जबकि कैवल्य का दुख निवृत्ति के अनन्तर अवस्था विशेष पर।

महर्षि पंतजलि के योग सूत्र में कैवल्य का स्वरूप निम्नलिखित सूत्रों में वर्णित हुआ है:—

1. तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्। (समाधि पाद 1—3)

2. तदभावात् संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम्। (साधनपाद 2—25)

3. सत्त्व पुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यम्। (विभूतिपाद 3—55)

4. पुरुषार्थ शून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूप प्रतिष्ठा वा चिति शक्तेः इति।

(कैवल्यपाद 4, 34)

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्:— योग सूत्र समाधिपाद के इस प्रथम सूत्र (1—3) में महर्षि ने बताया है कि 'कैवल्य' पुरुष का अपने वास्तविक स्वरूप की प्राप्ति है। कैवल्य की अवस्था में पुरुष को अपने वास्तविक रूप का ज्ञान (विवेक ज्ञान) हो जाता है। जबकि बन्धन की अवस्था में वह प्रकृत्ति एवं उसकी विकृतियों (मन, बुद्धि, अंहकार) को ही 'मैं' (अपना स्वरूप) समझता था और बन्धन ग्रस्त हो दुख भोगता था।

तदभावात् संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम्:—

योग सूत्र द्वितीयपाद (साधनपाद) के इस 25 वें सूत्र मे पंतजलि कहते है कि—

तत् अभावात् संयोग अभावः हानम् तत् दृशेः कैवल्यम्।

अर्थात् जब आत्मदर्शन रूप विवेक ज्ञान से अविद्या (अविवेक/अज्ञान) का सर्वथा अभाव हो जाता है तब अज्ञान जनित संयोग का भी अपने आप अभाव हो जाता है, फिर पुरुष का प्रकृति से कोई सम्बन्ध नहीं रहता और उसके जन्म मरण आदि सम्पूर्ण दुखों का सदा के लिए अत्यन्त अभाव हो जाता है तथा पुरुष अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है, यही उसका कैवल्य है।

स्पष्ट है कि सांख्य दर्शन की तरह योग भी मानता है कि—

☞ कैवल्य पुरुष के अपने स्वरूप में स्थित होने की अवस्था है।

☞ कैवल्य की प्राप्ति आत्म ज्ञान से होती है।

☞ कैवल्य विवेक ज्ञान की अवस्था है।

☞ कैवल्य में पुरुष प्रकृति संयोग रूपी बन्धन का अभाव हो जाता है।

☞ कैवल्य के बाद जन्म—मरण आदि सम्पूर्ण दुखों का आत्यन्तिक विनाश हो जाता है।

सत्त्व पुरुषायोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यम्:—

विभूतिपाद के इस अन्तिम 55 वें सूत्र में पंतजलि कैवल्य के विषय में कहते हैं कि जब सत्त्व अर्थात् चित्त प्रकृति और पुरुष इन दोनों की जब समान भाव से शुद्धि हो जाती है तब कैवल्य होता है।

यहाँ तात्पर्य यह है कि योग साधना से जब चित्त शुद्ध होने लगता है विवेक ज्ञान का उदय होने पर बुद्धि अत्यन्त निर्मल होकर अपने कारण में विलीन होने लग जाती है और उधर पुरुष का जो बुद्धि के साथ अज्ञान कृत सम्बन्ध है उसका अभाव होने से एवं उस अज्ञानजन्य मल–विक्षेप–आवरण का अभाव होने से पुरुष भी निर्मल हो जाता है। इस प्रकार जब दोनों की समभाव से शुद्धि हो जाती है तब कैवल्य होता है।

स्पष्ट है कि कैवल्य शुद्ध चित्त की अवस्था भी है। बुद्धि के स्वच्छ अर्थात् क्लिष्ट वृत्ति रहित होने पर विम्ब के अभाव में प्रतिविम्ब पड़ना ही सम्भव नहीं है। यही पुरुष का स्वरूप में अवस्थान या उसकी शुद्धि है। और यही कैवल्य है। यह जीवनमुक्ति (या कैवल्य) की अवस्था है। देहान्त के बाद विदेह कैवल्य या पूर्ण कैवल्य की प्राप्ति हो जाती है। इसीलिए महर्षि पंतजलि अपने योग सूत्र ग्रन्थ अंतिम कैवल्य पाद 34 में कैवल्य का सर्वाग पूर्ण वर्णन करते हुए कहते हैं कि–

पुरुषार्थ शून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यम् स्वरूप प्रतिष्ठा वा चितिशक्तेरिति।

अर्थात् जिनका पुरुष के लिए कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रहा ऐसे गुणों का अपने कारण में विलीन हो जाना (प्रतिप्रसव) कैवल्य है अथवा यों कहिये कि द्रष्टा पुरुष का अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाना कैवल्य है।

इस सूत्र में कैवल्य का वर्णन दो दृष्टियों से किया गया है– पहला गुणों की दृष्टि से तथा दूसरा पुरुष की दृष्टि से। प्रकृति के गुणों की प्रवृत्ति पुरुष के भोग और अपवर्ग का सम्पादन करने के लिए है। जैसा कि सांख्य कारिका में ईश्वर कृष्ण ने कहा है–

पुरुषस्य दर्शनार्थ कैवल्यार्थ प्रवृत्तेश्च।।

और योग सूत्र में महर्षि पंतजलि भी कहते हैं – भोग अपवर्गार्थम् दृश्यम् (2/18)

इसी काम को पूरा करने के लिए वे बुद्धि, अंहकार, मन, इन्द्रिय, तन्मात्रा और शब्द आदि विषयों के आकार में परिणत होते हैं (प्रकृति से विकृति का विकास होता है)।

पुरुष के भोग और अपवर्ग रूप फल उपस्थित करना ही गुणों का पुरुषार्थ है। जिस पुरुष के लिए ये गुण भोग भुगताकर कैवल्य (मोक्ष) का सम्पादन कर देते हैं उसके लिए अब इन गुणों का कोई कर्त्तव्य शेष नही रहता। इस प्रकार पुरुषार्थ शून्य हुए ये गुण अब और कोई प्रयोजन न होने से अपने कारणों में लय (विलीन) हो जाते हैं। यही गुणों की दृष्टि से कैवल्य है। तथा पुरुष की दृष्टि से कैवल्य है– उसका अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाना।

जब पुरुष का प्रकृति के साथ भोगात्मक सम्बन्ध समाप्त हो जाता है तो इसे जीवन्मुक्ति या जीवन कैवल्य कहते हैं तथा प्रारब्ध कर्मों के समाप्त हो जाने पर देहान्त पश्चात विदेह कैवल्य (विदेह मुक्ति) की प्राप्ति हो जाती है योग दर्शन सांख्य के मुक्ति भेद से भी सहमत है। कैवल्य प्राप्त पुरुष का पुनर्जन्म आदि नहीं होता।

20.3.7 हेय, हेतु, हान एवं हानोपायः–

समस्त प्राणी दुखों से बचना एवं सुख पाना चाहता है– किन्तु दुखों की श्रृंखला जीवन में आती ही रहती है। इसीलिए महर्षि पंतजलि में कहा है कि सभी प्रकार के दुखों से पूर्ण रूप छुटकारा पाने अर्थात् कैवल्य के लिए चार विषयों को जानना अत्यन्त आवश्यक है। ये

चार विषय हैं– 1. हेय 2. हेयहेतु 3. हान और 4. हानोपाय। अर्थात् दुख, दुख के कारण, दुख से मुक्ति और दुख मुक्ति के उपाय।

महर्षि पंतजलि के अनुसार जो सुख दायक प्रतीत होता है उसका परिणाम भी दुख दायक होता है (परिणाम दुख) सुख के समाप्त होने का भय दुख दायी है (ताप, दुख), सुख के संस्कार भी पुनः सुख न मिलने पर कष्ट ही देते हैं (संस्कार दुख) तथा तीनों गुणों में विरोध (गुण वृत्ति विरोध) के कारण भी दुविधा से दुख ही उत्पन्न होता है इसलिए विवेक वान पुरुष इन दुखों का समझते हैं–

परिणाम ताप संस्कार दुखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुखमेव सर्व विवेकिनः। (योग सूत्र 2/15)

इन दुखों का कारण (हेतहेतु:) पुरुष और प्रकृति (बुद्धि) का संयोग है–

द्रष्टा दृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः। (योग सूत्र 2/17)

और उस संयोग का कारण है अविद्या–

तस्य हेतुः अविद्या। (योग सूत्र 2/24)

अविद्या के अभाव से चेतन पुरुष और अचेतन बुद्धि के संयोग का अभाव हो जाता है जिससे पुनर्जन्मादि भावी दुखों का विनाश हो जाता है। यही हान है, इसी को पंतजलि ने चेतन आत्मा (पुरुष) का कैवल्य भी कहा है।

तद्‌भावात् संयोग अभावो हानं तत् दृशेः कैवल्यम् (योग सूत्र 2/25)

इस कैवल्य रूप हान का उपाय है विवेक ख्याति।

विवेकख्यातिः अविप्लवा हानोपायः। (योग सूत्र 2/26)

अर्थात् निश्चल और निर्दोष विवेक ज्ञान (विवेक ख्याति) ही हान का उपाय है।

प्रायः सांख्य, वेदान्त आदि सभी भारतीय दर्शन ज्ञान से ही मुक्ति की बात करते हैं अर्थात् विवेक ज्ञान ही मोक्ष का साधन है। पंतजलि भी इसी परम्परा का निर्वाह करते है। उनके अनुसार भी विवेक ज्ञान से ही कैवल्य होता है।

अब प्रश्न यह है कि उस विवेक ख्याति को प्राप्त करने का उपाय क्या है?

इस सन्दर्भ में महर्षि पंतजलि योग साधना को कैवल्य का उपाय बताते हैं। उनका कहना है कि योग के अंग का अनुष्ठान करने से अशुद्धि का नाश होने पर ज्ञान का प्रकाश विवेकख्याति पर्यन्त हो जाता है–

योगांग अनुष्ठानात् अशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिः आविवेक ख्यातेः। (योग सूत्र 2/28)

20.4 कैवल्य प्राप्ति के उपाय

भारतीय दर्शन सिर्फ सैद्धान्तिक दर्शन न होकर एक व्यावहारिक दर्शन है। इसलिए मोक्ष, निर्वाण या कैवल्य को अवधारणा भी व्यवहार से जुड़ी है। कैवल्य किताबी शब्द नहीं अपितु व्यावहारिक उपलब्धि है जिसे प्रयत्न के द्वारा पाया जा सकता है। इस अवस्था तक पहुँचने

के लिए ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, हठयोग, राजयोग, अष्टांग योग, क्रियायोग आदि अनेक प्रकार के साधना मार्ग बतलाये गये हैं। साधक अपनी रूचि योग्यता एवं विश्वास के अनुरूप किसी भी मार्ग पर चलकर साधना के नियमों का पालन कर कैवल्य की प्राप्ति कर सकता है।

20.4.1 ज्ञान योग साधनाः–

कैवल्य प्राप्ति हेतु जितने भी योग साधना मार्ग हैं उनमें ज्ञान साधना का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जब साधक मुख्य रूप से ज्ञान को ही आधार बनाकर कैवल्य की प्राप्ति के लिए साधना करता है तो उसे ज्ञानयोग साधना कहते हैं। अद्वैतवेदान्त दर्शन मुक्ति (मोक्ष/कैवल्य) के लिए जो योग साधना बताई गई है वह ज्ञान योग साधना ही है। श्री मद्भगवद् गीता में सांख्य आधारित साधना को भी ज्ञान योग कहा गया है क्योंकि वहाँ (सांख्य में) तत्वों के ज्ञान से मुक्ति (कैवल्य) की प्राप्ति बताई गई है।

शंकराचार्य के अद्वैत वेदान्त में कैवल्य के लिए मोक्ष शब्द का प्रयोग हुआ है और वहाँ मोक्ष का अर्थ है आत्मा का अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाना–

स्वात्मन्यवस्थानं मोक्षः। (तैत्तिरीय उप॰ भाष्य 1/11)

शंकराचार्य के अनुसार आत्मा ही ब्रह्म है– अयम् आत्मा ब्रह्म।

(वृहदाहरण्यक उपनिषद 2.5.19)

वह स्वभावतः सच्चिदानन्द स्वरूप है किन्तु अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान न होने के कारण (अज्ञान वश) वह बन्धन ग्रस्त होकर जीव के रूप में सुख दुख भोगती है। अज्ञान का नाश ज्ञान से ही सम्भव है। अतः मुक्ति का मार्ग ज्ञान मार्ग ही है– **ज्ञानात् एवं मुक्तिः।**

यहाँ ज्ञान से तात्पर्य आत्म ज्ञान या ब्रह्म ज्ञान से है। वेदान्त दर्शन में कैवल्य के लिए मुक्ति या मोक्ष शब्द का प्रयोग हुआ है।

अब प्रश्न यह है कि आत्म ज्ञान कैसे होगा? इस सम्बन्ध में वेदान्त दर्शन के अनुसार उच्च कोटि के साधकों (पूर्वजन्म के योगियों) की हृदय ग्रन्थि तो श्रुति वाक्य सुनने से ही खुल जाती है, उनके अज्ञान का नाश होकर ब्रह्म भाव की प्राप्ति हो जाती किन्तु अन्य निम्न कोटि के व्यक्तियों के लिए तो चतुष्टय का होना अनिवार्य है। जिसे ज्ञानयोग के वहिरंग साधना कहते हैं। तत्पश्चात अन्तरंग साधना के अन्तर्गत श्रवण मनन और निदिध्यासन से समाधि की अवस्था में पहुँचने पर आत्म साक्षात्कार होता है।

साधन चतुष्टयः– मोक्ष प्राप्ति के इच्छुक साधक में चार प्रकार की योग्यताओं का होना आवश्यक है जिन्हे साधन चतुष्टयः कहते हैं।

ये चार योग्यताएं हैं– 1. विवेक 2. वैराग्य 3. षड्सम्पत्ति और 4. मुमुक्षुत्व–

आचार्य शंकर के शब्दों में–

नित्यनित्य वस्तुविवेकः इहमूत्रार्थ भोग विरागः।

शमादि–षट्क सम्पत्तिः मुमुक्षुत्वं चेति।। (तत्व बोध 3)

अर्थात् नित्य और अनित्य वस्तु का पृथक–पृथक विवेक हो जाना, इस लोक तथा परलोक में भोगों की इच्छा का न होना, शमदम आदि षड्सम्पत्ति और मोक्ष के प्रति तीव्र इच्छा का होना– ये साधन चतुष्टय हैं।

1. विवेकः– ज्ञान योग साधना की पहली आवश्यकता विवेक का होना है। ब्रह्म ही एक मात्र नित्य वस्तु है। ब्रह्म के अतिरिक्त समस्त वस्तुएं अनित्य (मिथ्वा, नाशवान) हैं। इस प्रकार का निश्चय हो जाना ही नित्य–अनित्य वस्तु विवेक कहलाता है।

2. वैराग्यः– मोक्ष या कैवल्य के इच्छुक साधक के अन्दर लौकिक एवं परालौकिक भोगों के प्रति राग का अभाव (वैराग्यभाव) होना आवश्यक है।

3. षड् सम्पत्तिः– मोक्ष साधना के इच्छुक साधक के लिए छः सम्पत्तियों (शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान) की साधना आवश्यक है, जिनका वर्णन निम्नवत् है–

(i) शमः– अन्तः इन्द्रिय मन को वश में रखना अर्थात् मनोनिग्रह (मन पर नियन्त्रण) शम कहलाता है–

शमो नाम अन्तरिन्द्रिय निग्रहः।

अन्तरिन्द्रिय नाम मनः।

तस्य निग्रहः शमः।।

यद्यपि मन महाबलवान चंचल एवं दुर्दमन है परन्तु अभ्यास वैराग्य के द्वारा इसे वश में किया जा सकता है–

असंशय महाबाहो मनोदुर्निग्रहं चलम्।

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येन च गृहयते।। (गीता 6/35)

यह चंचल मन यदि वश में हो जाय तो सधे हुए घोड़े के समान आनन्ददायक तथा गन्तव्य स्थान (मोक्ष) तक पहुँचाने वाला भी बन जाता है। अतः मन का निग्रह साधना की आवश्यक शर्त भी है और उपलब्धि भी। मन के संयम (शम) से ही इन्द्रियों का संयम (दम) सम्भव हो पाता है अन्यथा नहीं। इसलिए दम से पूर्व शम आवश्यक बताया गया है।

(ii) दमः– इन्द्रियों के नियन्त्रण को दम कहते हैं– ''दमो नाम बाहयेन्द्रियनिग्रहः''।

अर्थात् आँख, कान, जिह्वा आदि वाह्य इन्द्रियों का नियन्त्रण दम है। अनुचित कार्यो, दुश्चरितों, पतन की तरफ ले जाने वाले विषय भोगों की तरफ भागने से इन्दियों को रोकना ही दम कहलाता है।

गीता में श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि प्रबल इन्दियाँ मन को बलपूर्वक विचलित कर देती हैं–

इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः। (गीता 2/60)

तथा जिसकी इन्द्रियाँ वश में है उसकी बुद्धि दृढ़ता पूर्वक स्थिर रहती है–

वशे हि यस्यइन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता। (गीता 2/61)

अतः मोक्ष के इच्छुक साधक (दुखों से मुक्ति जो भी चाहता हो उस) के लिए दम आवश्यक है।

यहाँ विद्यार्थी ध्यान दें तो शम और दम के अन्दर एक मनोविज्ञान पायेंगे। शम का अर्थ है शमन यानी शान्त करना जबकि दम का अर्थ है दमन यानी दबाना जबरदस्ती उसको उसके कार्यो से रोकना। योग साधना में मन का शमन कहा गया है दमन नहीं। जिस प्रकार आग को दबाया नहीं जा सकता। आग को दबाने पर वह कुछ देर बाद और प्रबल हो उठती है उसी प्रकार मन को भी दबाया नहीं जाना चाहिए। मन का दमन नहीं करना है जैसे अग्नि शमन यन्त्र (फायर ब्रिगेड) अग्नि का दमन नहीं शमन करता है वह आग को दबाता नहीं बल्कि अग्नि के विपरीत गुणों (पानी) की बौछार अग्नि पर करता है, उसी प्रकार मन के शमन के लिए मन के अन्दर श्रेष्ठ भावों, उत्तम विचारों को लाकर बुरे भावों–बुरे विचारों का शमन किया जाता हैं। मन का दमन करना मनोरोगों का कारण बनता है। कुन्ठा, निराशा, हिंसा, हीनता एवं अन्य मनोविकार उत्पन्न होते हैं। अतः मन के लिए शम है और इन्द्रियों के लिए दम। इन्द्रियों को बलपूर्वक रोकना होता है यही दमन है।

इसलिए दम से पूर्व शम की अधिक आवश्यकता है। बिना मन पर नियन्त्रण किये इन्द्रियों पर नियन्त्रण व्यर्थ है। गीता में भी कहा गया है–

'' मन से विषयों का चिन्तन कर, जो कर्म इन्द्रियों को रोके।

मिथ्याचारी पाखण्डी वह कह उसको सारा जग टोके।।''

(iii) उपरतिः– उपरति का अर्थ है विरत (अलग) हो जाना। इन्द्रियों को विषयों से हटाकर सब कामनाओं से शून्य हो जाना उपरति है। शंकराचार्य ने अपने धर्म का पालन करने को उपरति कहा है– स्वधर्मानुष्ठानमेव। इस प्रकार अपने अपने कर्त्तव्य कर्म में तत्पर रहकर तथा आसक्ति (राग) से विरत होकर मन को आत्मा में लगाये रखना ही उपरति है।

(iv) तितिक्षाः– सर्दी–गर्मी, भूख–प्यास, मान–अपमान, सुख–दुख आदि द्वन्द्वों को खुशी–खुशी धैर्यपूर्वक सहन कर साधना में लगे रहना ही तितिक्षा है। इसे तप भी कहते हैं–

तपो द्वन्द्व सहनम्।

प्रत्येक योग साधना में तप का महत्त्व है। महर्षि पंतजलि कहते हैं कि तप के प्रभाव से जब अशुद्धि का क्षय हो जाता है तब शरीर तथा इन्द्रियों की सिद्धि हो जाती है–

कायेन्द्रियसिद्धिः अशुद्धिक्षयात् तपसः। (योग सूत्र 2/43)

(v) श्रद्धाः– शंकराचार्य के शब्दों में 'गुरुवेदान्त वाक्ये विश्वासः श्रद्धा' अर्थात् वेद, वेदान्त और गुरुवाक्यों में दृढ़ निष्ठा एवं अटल विश्वास रखना ही श्रद्धा है। गीता के अनुसार श्रद्धावानः व्यक्ति ही ज्ञान की प्राप्ति करता है–

श्रद्धावांल्लभते ज्ञानं।

(vi) 6. समाधानः— चित्त की एकाग्रता ही समाधान है। मल, विक्षेप, आवरण आदि से रहित शुद्ध निर्मल चित्त को ब्रह्म में स्थिर रखना समाधान कहलाता है, चित्त की इच्छापूर्ति का नाम समाधान नहीं है—

सर्वदा स्थापनं बुद्धेः शुद्धे ब्रहमणि सर्वथा।

तत्समाधानम् इति युक्तं न तु चित्तस्य लालनम्।। (आचार्य शंकर, तत्वबोध)

4. मुमुक्षुत्वः— इस दुख—मय संसार सागर से तर कर मोक्ष रूप अमृत पद को प्राप्त करने की तीव्र इच्छा ही मुमुक्षुत्व है। मोक्ष की तीव्र इच्छा होने पर ही साधक मोक्ष मार्ग पर चलने (साधना करने) को तत्पर होता है। इसलिए साधक के लिए मुमुक्षुत्व का विशेष महत्त्व है।

शंकराचार्य के अनुसार उपर्युक्त चार साधनो (विवेक, वैराग्य, षड्सम्पत्ति और मुमुक्षुत्व) से सम्बन्ध होने पर ही मुमुक्षु तत्वविवेक के अधिकारी होते हैं—

एतत्साधन चतुष्टयम् ततस्तत्त्व विवेकस्याधिकारिणो भवन्ति। (शंकरचार्य, तत्वबोध 14)

और अन्ततः तत्वविवेक या विवेक ज्ञान से मुक्ति मिलती है अर्थात् आत्मा को अपने वास्तविक रूप का ज्ञान हो जाता है।

वृहराण्यक उपनिषद् में **महर्षि याज्ञवल्क्य** अपनी भार्या मैत्रेयी को विवेक ज्ञान हेतु श्रवण, मनन, और निदिध्यासन का उपदेश देते हैं—

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यों निदिध्यासितव्य मैत्रेयी।।(वृह॰ 4/5/6)

1 श्रवणः— गुरु के शास्त्रोक्त उपदेशों का सुनना श्रवण है।

2 मननः— गुरु के उपदेशों एवं श्रुति वाक्यों पर निरन्तर चिन्तन करना मनन है।

3 निदिध्यासनः— निदिध्यासन का अर्थ है अनुभूति या साक्षात्कार। जीव और ब्रह्म के तादात्म्य का ध्यान करते रहना निदिध्यासन है। निदिध्यासन का अभ्यास तब तक करते रहना चाहिए जब तक की ब्रहमात्मैकत्व (ब्रह्म और आत्मा एक ही है) की अपरोक्ष अनुभूति न हो जाय।

उदाहरण के लिए जब साधन चतष्टय से युक्त सुपात्र शिष्य को गुरु यह उपदेश देता है कि तत्वमसि (अर्थात् वह ब्रह्म तुम हो) और इस गुरु उपदेश वाक्य का शिष्य श्रवण करके तब तक उस पर मनन और निदिध्यासन करता रहता है जब तक उसे अहम् ब्रहमास्मि (अर्थात् मैं ही ब्रह्म हूँ यानी यह आत्मा ही ब्रह्म है) का साक्षात् अनुभव न हो जाय। इस आत्म साक्षात्कार से अविद्या दूर हो जाती है और ब्रह्म भाव प्राप्त हो जाता है जो कि मोक्ष की अवस्था है— ब्रह्मभावश्च मोक्षः। यह जीवन्मुक्ति है। शरीर छुटने पर विदेह मुक्ति हो जाती है।

वेदान्त दर्शन में निदिध्यासन का विशेष महत्त्व है क्योंकि समाधि और आत्म साक्षात्कार इसी से होता है इसीलिए वेदान्त दर्शन में निदिध्यासन को ही योग माना गया है। अपरोक्षानुभूति में निदिध्यासन को एक पूरी साधना प्रणाली मानकर इसके 15 अंग बताये

गये हैं। यम, नियम, त्याग, मौन, देश, आसन, मूलबन्ध, देहस्थिति, दृक्स्थिति, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

यमोहि नियमस्त्यागो मौनं देशश्चकालतः।

आसनमूलबन्धश्च देहसाम्यं च दृक्स्थितिः।।

प्राणसंयमनं चैव प्रत्याहारश्च धारणा।

आत्मध्यानं समाधिश्च प्रोक्तान्यङ्गानि वै क्रमात।। (अपरोक्षानुभूति 102–103)

20.4.2 कर्म योग साधनाः–

प्रायः यह कहा जाता है कि कर्म ही बन्धन के कारण होते हैं क्योंकि व्यक्ति कर्म करता रहता है और कर्म का अच्छा या बुरा फल भोगने के लिए वह जन्म मृत्यु के चक्र में धूमता रहता है। इस प्रकार कर्म करना, उस कर्म से कर्म संस्कार बनना और फल भागेने का क्रम बना रहता है। इस प्रकार कर्म ही बन्धन का कारण कहा जाता है।

किन्तु कर्म योग कर्म को बन्धन का कारण ही नहीं मानता बल्कि वह इसे मोक्ष का साधन भी मानता है। कर्म योग साधना के अनुसार कर्म के पीछे भाव महत्त्वपूर्ण होता है। जो कर्म राग, द्वेष आसक्ति की भावना से (फल की इच्छा से) किये जाते हैं, वे अवश्य ही बन्धन का कारण बनते हैं किन्तु जो कर्म कर्त्तव्य भावना से किये जाते हैं, आसक्ति को त्याग कर निष्काम भाव से किये जाते हैं, उनसे कर्म संस्कार नहीं बनते। वे भुने हुए बीज के समान हो जाते हैं, जो उगता नहीं हैं इस प्रकार निष्काम कर्म मोक्ष का मार्ग है।

इस प्रकार कर्म दो रूप है–

1. सकाम कर्म– यह बन्धन का कारण है।

2. निष्काम कर्म– यह मोक्ष का मार्ग है।

गीता में कृष्ण ने कर्मो की कुशलता को ही योग कहा है–

योगः कर्मशु कौशलम्। (गीता 2/50)

व्यक्ति एक क्षण भी बिना कर्म किये नही रह सकता। कर्म करना उसका स्वभाव है इसलिए कुशलता के साथ ज्ञान युक्त कर्म करना ही कर्म योग कहलाता है, जिस पर चलते हुए अन्त में मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। इसीलिए गीता में कर्म सन्यास से कर्म योग को श्रेष्ठ माना गया है–

सन्यासः कर्म योगेश्च निःश्रेयस करा वुभौ।

तयोस्तु कर्म सन्यासात कर्मयोगो विशिष्यते।।

कर्मयोग साधना के तीन चरणः–

प्रथम चरण कर्मफल त्यागः– कर्म योग साधना की प्रथम अवस्था में साधक अपने कर्त्तव्य कर्मो को फल की इच्छा से रहित होकर करता रहता है जिससे वह शाश्वत शान्ति को प्राप्त करता है–

युक्तः कर्मफलंत्यक्त्वा शान्तिमाप्तोति नैष्ठिकीम्।

अयुक्तः कामकारेण फलेसक्तो निबध्यते।। (गीता 5/12)

द्वितीय चरण– भगवद् अर्पित कर्मः–

साधना की दूसरी अवस्था में वह कर्त्तव्य कर्म को भी भगवान् को अर्पित करने लगता है। इस अवस्था में उसमें भक्ति भावना आ जाती है और वह जो कुछ भी करता है भगवान के लिए करता है, स्वयं के लिए नहीं। इसीलिए गीता में श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं–

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददाति यत्।

यत्रपस्यसि कौन्तेय तत्कुरूष्व मदर्पणम्।। (गीता 9/27)

अर्थात् हे अर्जुन तू जो भी कर्म करता है, जो खाता है, जो हवन करता है, जो दानादि देता है, जो तप करता है, वह सब मुझको अर्पण कर। इस प्रकार समर्पण भाव से कर्म करना कर्म योग की द्वितीय अवस्था है।

तृतीय चरण– कर्तापन से मुक्तिः–

कर्म योग की तृतीय, अवस्था में साधक कर्ता भाव से भी मुक्त हो जाता है। वह अपने को कर्ता भी नहीं मानता। उसके अन्दर करने वाले राम कराने वाले राम का भाव प्रगाढ़ हो जाता है। वह अनुभव करता है कि मेरे द्वारा जो भी कर्म हो रहे है, उन सब को करने वाले ईश्वर ही हैं। वह तो निमित्त मात्र है। इस अवस्थाओ में साधक कर्म करता हुआ भी कर्म फल के बन्धन से मुक्त रहता है। ऐसे कर्मो से संस्कार उत्पन्न नहीं होते। ये कर्म भुने हुए बीज के समान हो जाते हैं। कर्म योग की यह साधना साधक के मोक्ष का मार्ग प्रशस्त कर देती है।

सांसारिक व्यक्तियों के लिए कर्म योग साधना उचित एवं स्वाभविक मार्ग है, जिसे बिना घर परिवार संसार छोड़े ही सांसारिक जीवन जीते हुए सांसारिकता से मुक्त रहकर किया जा सकता है। कर्म योग साधना एक ऐसा मार्ग है जिसमें व्यावहारिक और पारमार्थिक लौकिक और पारलौकिक– दोनों तरह के उत्कर्ष होते हैं। इसीलिए महात्मा गाँधी ने कहा है कि सब योगों में श्रेष्ठ निष्काम कर्म योग ही है।

20.4.3 भक्ति योग साधनाः–

सभी योग साधनाओं में भक्तियोग सबसे सरल, सहज, सुगम, सर्वसुलभ और सर्वजन प्रिय साधना है जिसका अधिकारी हर कोई भाव प्रधान व्यक्ति बन सकता है।

भक्ति शब्द भज् सेवायाम् धातु से क्तिन् प्रत्यय लगाकर बनता है जिसका अर्थ है सेवा पूजा उपासना और संगतिकरण आदि। संस्कृत शब्द भक्ति का हिन्दी पर्याय प्रेम है इसीलिए कहा है कि 'भक्ति नाम प्रेम विशेष' अर्थात् भगवान के प्रति उत्कट प्रेम विशेष का नाम भक्ति है। भक्त और प्रेमी दोनो एक ही हैं। भक्त का सेवा के द्वारा भगवान से सम्बन्ध स्थापित करने का नाम भक्तियोग है और जिसके अन्तःकरण में अनन्त प्रेम की धारा बह रही हो वही भक्त है।

ज्ञानयोग साधक अद्वैत मार्गी शंकराचार्य ने भी भक्ति साधना के महत्त्व को बताते हुए कहा है कि–

मोक्षकारणसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी।

स्वस्वरूप अनुसन्धानं भक्तिरित्याभिधीयते।। (विवेक चूडामणि, 32)

अर्थात् मोक्ष प्राप्ति के समस्त साधनाओं में से भक्ति साधना ही सबसे बढ़कर है और अपने स्वस्वरूप का अनुसन्धान करना ही भक्ति कहलाता है।

भक्ति योग की परिभाषाएं:–

भक्ति योग के शास्त्रों में भक्ति की भिन्न भिन्न परिभाषाएं दी गई है परन्तु सबका लक्ष्य एक ही है भगवद् प्राप्ति। जैसे–

स्वामी विवेकानन्द के अनुसारः–

सच्चे व निष्कपट भाव से ईश्वर की खोज करना ही भक्ति योग है।

पराशरनन्दन **व्यास (पराशर्य) के अनुसार** भगवान की पूजा अर्चना तथा उपासना आदि में विशेष अनुराग का होना ही भक्ति है–

पूजादिष्वनुराग इति पराशर्यः। (नारद भक्ति सूत्र 16)

आचार्य गर्ग के अनुसार– भगवान के दिव्य गुण कथन के श्रवण आदि में अनुराग होना ही भक्ति है–

कथादिष्वितिगर्गः। (नारद भक्ति सूत्र 17)

महर्षि शान्डिल्य के अनुसार– आत्म प्रेम के अविरोधी साधनों में अनुराग का होना भक्ति है। अर्थात् आत्म प्रेम ही भक्ति है–

आत्मरत्य विरोधेनेति शाण्डिल्यः। (नारद भक्ति सूत्र 18)

परम भक्त **नारद जी के मतानुसार** – अपने समस्त कर्मों का भगवान में अर्पित कर देना और भगवान का थोड़ा सा भी विस्मरण होने पर जो नितान्त व्याकुल हो जाना है वही परा भक्ति है–

नारदस्तुतदर्पिताखिलाचारता तद्विस्मरणे परम व्याकुलतेति। (नारद भक्ति सूत्र 19)

इस प्रकार ईश्वर के प्रति अनन्य प्रेम ही भक्ति का मूल मन्त्र है। भक्ति योग में भक्त का भगवान से भक्ति के माध्यम से योग (मिलन) होता है। भक्ति योग साधना में किसी न किसी रूप में भगवान को मानना आवश्यक है और उसके प्रति श्रद्धा के साथ साथ भगवान के प्रेम में डूबकर उसके साथ एक हो जाना ही भक्ति योग का लक्ष्य है और यही जीवन का परम पुरुषार्थ मोक्ष है।

चार प्रकार के भक्तः–

जो भी व्यक्ति भगवान का भजन उपासना पूजा आदि करता है वही भक्त है (भजन भक्ति) हर भक्त के भाव और भक्ति के पीछे प्रयोजन अलग अलग हो सकते हैं। इस दृष्टि से गीता में चार प्रकार के भक्त बताये गये हैं– आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी, और ज्ञानी।

चतुर्विद्या भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।

आर्तो जिज्ञासुः अर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।। (गीता 7/16)

1. आर्तः– आर्तभक्त वे है जो सांसारिक विपत्तियों से छुटकारा पाने की लिए भगवान को याद करते हैं। जैसे गजराज और द्रोपदी आदि।

2. जिज्ञासुः– ब्रह्मतत्व को यथार्थ रूप में जानने की इच्छा से भगवान का भजन करने वाले भक्त जिज्ञासु होते हैं जैसे राजा जनक, मुचुकुन्द, उद्धव आदि।

3. अर्थार्थीः– अर्थार्थी भक्त वे है जो लोकेषणा, वित्तेषणा, पुत्रेषणा, की प्राप्ति हेतु अर्थात् धन दौलत, मान मर्यादा, प्रतिष्ठा, पत्नी, पुत्र आदि प्राप्ति की इच्छा से भगवान का भजन करते हैं। जैसे ध्रुव, सामान्य मनुष्य एवं दानव आदि।

4. ज्ञानीः– ज्ञानी भक्त वे है जो आत्म ज्ञान को आवश्यक समझकर अपने चित्त को ध्यान समाधि लगाये रहते हैं। ऐसे समाहित चित्त वाले भक्त को श्री कृष्ण ने अपना स्वरूप ही बताया है–

ज्ञानी त्वात्मैव में मतम्।। (गीता)

सभी प्रकार के भक्तो में ज्ञानी भक्त ही सबसे श्रेष्ठ और उत्तम होता है।

भक्ति के भेदः–

भक्ति रसायनं नामक ग्रन्थ के अनुसार भक्ति के भेद एवं उपभेद निम्न प्रकार से है–

भक्ति

(क) अपरा भक्ति (ख) परा भक्ति

या

गौणी भक्ति

1 वैधी भक्ति 2 रागात्मिका भक्ति

या

नवधा भक्ति

भक्ति रसायन में कहा गया है कि–

भक्तिस्तु द्विविधा प्रोक्ता परापरेति संज्ञिता।

एकधात्र पराप्रोक्ता त्वपरा नवधा स्मृता।।

भक्ति दो प्रकार की होती है परा भक्ति और अपरा भक्ति। अपराभक्ति का ही अपर नाम गौणी भक्ति भी है जो दो प्रकार की होती है– वैधी और रागात्मिका। वैधी भक्ति को नवधा भक्ति भी कहते हैं क्योकि यह नौ प्रकार की होती है।

(क) अपरा भक्तिः– इसे गौणी भक्ति भी कहते हैं। आरम्भिक भक्त ईश्वर के सगुण रूप की उपासना मूर्ति पूजा, आरती, नमाज, नाम जप, कीर्तन, प्रार्थना आदि साधनो के द्वारा अपना प्रेम, और श्रद्धा विश्वास ईश्वर को अर्पित करते हैं– इस प्रकार की भक्ति ही अपरा या गौणी भक्ति कहलाती है। यह भक्ति भी दो प्रकार की होती है– **1.** वैधी भक्ति या नवधा भक्ति और **2.** रागात्मिका भक्ति।

नवधा भक्तिः– भक्ति योग साधना का आरम्भ साधारण पूजा पाठ से होता है जिसे अनेक प्रकार से किया जाता है। इस वैधी भक्ति के नौ प्रकार होने से इसे नवधा भक्ति भी कहते हैं। भक्ति शास्त्रों में नवधा भक्ति का विशेष महत्त्व है और इसका विस्तार पूर्वक वर्णन मिलता है। जैसे श्री मद्भागवत महापुराण में कहा गया है–

> **''श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनम्।**
>
> **अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।। (भागवत 7/5/23)**

अर्थात् श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चन वंदन, दास्य, सांख्य और आत्मनिवेदन ये भक्ति के नवभेद है, जो निम्नवत हैं–

1. श्रवण भक्तिः– श्रवण का अर्थ है सुनना। शांत चित्त होकर श्रद्धा भक्ति एवं विश्वास पूर्वक भगवान की महिमा उनके दिव्य गुण एवं लीलाओं का, मंगल चरित्र को सुनना ही श्रवण भक्ति है। जैसे परीक्षित की भक्ति।

2. कीर्तन भक्तिः– भगवान के नाम का जप उनके रूप गुण चरित्र एवं लीला आदि को गीत व भजनों के माध्यम से गाना (गायन करना) नृत्य करना, कथन करना कीर्तन भक्ति है जैसे श्री शुकदेव जी की भक्ति।

3. स्मरण भक्तिः– भगवान को हर पल हर क्षण याद करना, भगवान के यश, गुण व कीर्ति का निरन्तर चिंतन करते रहना स्मरण भक्ति है। जैसे भक्त प्रहलाद की भक्ति।

4. पाद सेवनमः– भगवान के श्री चरणों की सेवा करना, उनके चरणों में मन को लगाना ही पाद सेवन भक्ति है। जैसे लक्ष्मी जी की भक्ति।

5. अर्चन भक्ति– अर्चन का तात्पर्य है पूजन। भगवान का शास्त्रोक्त विधि से स्थूल रूप में या मानसिक रूप से पूजन करना अर्चन भक्ति है। जैसे राजा पृथु की भक्ति।

6. वन्दन भक्तिः– वैदिक मन्त्रों एवं स्तोत्रों के द्वारा भगवान की स्तुति प्रार्थना करना ही वन्दन भक्ति है। जैसे अक्रूर की भक्ति।

7. दास्य भक्तिः– स्वयं को भगवान का सेवक समझकर दस्य भाव से कर्म करना ही दास्य भक्ति है। जैसे हनुमान जी की भक्ति।

8. सख्य भक्तिः– भगवान के प्रति मित्रभाव रखकर उनकी भक्ति करना साख्य भक्ति है। जैसे अर्जुन, सुदामा की भक्ति।

9. आत्म निवेदन भक्तिः– अपनी बुद्धि , प्रतिमा, ज्ञान, संकल्प, मन, कर्म– सबकुछ भगवान को अर्पित करके उनके शरणागत हो जाना, ईश्वर का दिया जीवन ईश्वरीय कार्यो में ही न्योछावर कर देना आत्मनिवेदन भक्ति हैं जैसे राजा बलि की भक्ति। यह नवधा भक्ति की चरम अवस्था है।

2. रागात्मिका भक्तिः— अपरा भक्ति या गौणी भक्ति की उच्च अवस्था रागात्मिका भक्ति है।

जब भक्त साधक नवधा भक्ति की चरम अवस्था को पार कर लेता है तब उसक हृदय में एक अलौकिक भगवत प्रेम भाव प्रवाहित होने लगती है। इस दिव्य प्रेम और आनन्द रस का अनुभव कराने वाली भक्ति विशेष ही रागात्मिका भक्ति है—

"रसानुभाविका आनन्द शक्तिदा रागात्मिका।"

नवधा भक्ति साधनावस्था है तो रागात्मिका भक्ति अनुभूति अवस्था। इसमें भक्त को भगवान की झलक सर्वत्र मिल जाती है।

(ख) परा भक्तिः— रागात्मिका भक्ति (अपरा भक्ति) की चरम अवस्था ही परा भक्ति है। यह साधक (भक्त) के भक्तियोग की पराकाष्ठा है जिसमें भक्त को कण कण में भगवान, स्वयं के अन्दर भी भगवान का अनुभव हो जाता है परा भक्ति में भक्त और भगवान अलग अलग नहीं रहते। उपासक और उपास्य का द्वैत मिट जाता है। भक्त भक्तियोग के गहन समाधि में लीन होकर अभेद भक्ति से आत्मा में ही ब्रह्म का साक्षात्कार करके अन्ततः कैवल्य या मोक्ष को प्राप्त करता है।

20.4.4 हठयोग साधनाः—

हठ शब्द 'ह' और 'ठ' इन दो अक्षरों से मिलकर बना है। इनमें 'ह' कार का अर्थ सूर्य स्वर या पिंगला नाड़ी से तथा 'ठ' कार का अर्थ चन्द्र स्वर या इड़ा नाड़ी से लिया गया है। इन दोनों नाड़ियो के मिलन से वायु सुषम्ना नाड़ी में चलने लगता है जिससे मूलाधार में सोई हुई कुंडलिनी शक्ति जाग्रत होकर सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश कर ऊपर की ओर चलने लगती है और षड् चक्रों का भेदन करती हुई ब्रह्म रंध्र में पहुँचकर ब्रह्म के साथ एकत्व को प्राप्त होती है। यही आत्म और परमात्म तत्व का मिलन है। यह मिलन ही योग कहलाता है जिससे मोक्ष मुक्ति या कैवल्य की प्राप्ति हो जाती है।

योग शिखोपनिषद में कहा गया है कि—

हकारेण तु सूर्यः स्यात् ठकारेणोन्दुरूच्यते।

सूर्य चन्द्रम सोरैक्यं हठ इत्यभिधीयते।। (योग शिखोपनिषद 1/133)

अर्थात् ह कार (ह) से सूर्य तथा ठ कार (ठ) से चन्द्रमा कहा गया है। सूर्य और चन्द्र का ऐक्य होना ही हठ कहलाता है।

हठप्रदीपिका के अनुसार— हठात् मोक्ष द्वार का उद्घाटन करने वाली साधना पद्धति को हठयोग कहते है।

उद्घाटयेत्कपाटं तु यथा कुचिंकया हठात्।

कुण्डलिन्या ततो योगी मोक्षद्वारं प्रभदयेत्।। (हठप्रदीपिका 105)

हठप्रदीपिका के टीकाकार **ब्रह्ममानन्द** के मतानुसार 'ह' अर्थात् सूर्य से तात्पर्य प्राणवायु से है एवं 'ठ' अर्थात् चन्द्र से तात्पर्य अपान वायु से है। इन दोनों वायुओ का प्राणायाम से निरोध करना ही हठयोग कहलाता है।

हठयोग के अंगः—

हठप्रदीपिका में स्वामी स्वात्माराम जी के अनुसार हठयोग के मुख्य रूप से चार अंग हैं– **1.** आसन **2.** प्राणायाम **3.** मुद्रा एवं बन्ध और **4**. नादानुसंधान। हठप्रदीपिका के दूसरे अध्याय में प्राणायाम साधना की तैयारी हेतु शुद्धि क्रियाओं के रूप में षड्कर्म (धौति, नेति, वस्ति, नौली, त्राटक और कपालभाति) का वर्णन किया गया है। मुद्रा के अन्तर्गत शक्ति चालिनी मुद्रा के सन्दर्भ में कुण्डलिनी शक्ति एवं उसके जागरण की विधि पर प्रकाश डाला गया है। तथा नाद अनुसंधान के अन्तर्गत समाधि का वर्णन प्राप्त होता है।

कैवल्य धाम लोनावाला से प्रकाशित हठप्रदीपिका में हठयोग के पाँच अंग बताए गये हैं। जिसमें पांचवा अंग यौगिक चिकित्सा है।

गोरक्षनाथ ने हठयोग के 6 अंग बताये है। गोरक्ष पद्धति में कहा गया कि आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि– हठयोग के 6 अंग है–

आसनं प्राणं संरोधः प्रत्याहारश्च धारणा।

ध्यानं समाधिरेतानि योगाङ्गानि वदन्ति षट्।।

योग के अन्य प्रमुख ग्रन्थ घेरण्ड संहिता में महर्षि घेरण्ड ने हठयोग के सात अंग बताये है जिन्हें **सप्तांग योग** भी कहते हैं जो निम्न है–

शोधनं दृढ़ता चैव स्थैर्य धैर्य च लाघवम्।

प्रत्यक्षं च निर्लिप्तम् च घटस्य सप्त साधनम्। (घेरण्ड संहिता 1/9)

अर्थात् शरीर रूपी घट को शुद्ध करने के लिए योगाभ्यासी को सात साधनों का अभ्यास करना चाहिए–

1. शोधन अर्थात् शरीर की शुद्धि
2. दृढ़ता अर्थात् शरीर को दृढ़ करना
3. स्थैर्य अर्थात् शरीर में स्थिरता लाना
4. धैर्य अर्थात् धैर्य की प्राप्ति करना
5. लाघव अर्थात् शरीर को हल्का करना
6. प्रत्यक्षं अर्थात् प्रत्यक्ष करना
7. निर्लिप्तम् अर्थात् निर्लिप्तता।

उपर्युक्त सात साधन कैसे प्राप्त होगें, इसका उपाय बताते हुए घेरण्ड ऋषि कहते हैं कि–

ҕ **षड्कर्मणा शोघनं च आसनेन भवेद् दृढ़म।**

मुद्रया स्थिरता चैव प्रत्याहारेण धीरता।।

प्राणायामाल्लघवं च ध्यानात् प्रत्यक्षमात्मनः।

समाधिना निर्लिप्त च मुक्तिरेव न संशयः।। (घेरण्ड संहिता 1/10,11)

अर्थात् षड्कर्मो द्वारा शरीर की शुद्धि होती है। आसनों से शरीर दृढ़ होता है मुद्राओ से शरीर में स्थिरता आती है। प्रत्याहार से धैर्य की प्राप्ति होती है। प्राणायाम के द्वारा शरीर लघुता को प्राप्त होता है एवं समाधि से चित्त निर्लिप्त होता है जिससे अवश्य ही मुक्ति (मोक्ष या कैवल्य की प्राप्ति) हो जाती है, इसमें कोई संशय नहीं है।

इस प्रकार शरीर, मन व प्राण का शोधन करके इन्हें वश में करना ही हठयोग का लक्ष्य है। बिना शरीर एवं चित्त की शुद्धि तथा संयम के आध्यात्मिक उन्नति आत्म साक्षात्कार सम्भव नहीं हो पाता। इसीलिए स्वामी स्वात्माराम जी कहते हैं कि राजयोग अर्थात् समाधि की अवस्था प्राप्त करने के लिए हठयोग विद्या का उपेदश किया जा रहा है–

केवल राजयोगाय हठविद्योपदिश्यते। (हठयोग प्रदीपिका 1/2)

20.4.5 राज योग साधनाः–

राजयोग साधना को सभी प्रकार के योग साधनाओं का राजा कहा जाता है। हठयोग साधना का प्रारम्भ शरीर के शोधन व नियन्त्रण से होता है जबकि राजयोग साधना का प्रारम्भ सूक्ष्म शरीर या मन (चित्त) के शोधन नियन्त्रण से होता है। मन सभी इन्द्रियों का राजा है, इसलिए भी मन संयम प्रधान इस योग साधना को राजयोग साधना कहा जाता है। राजयोग साधना का प्रमुख ग्रन्थ महर्षि पंतजलि द्वारा रचित 'योग सूत्र' है यही कारण है कि पंतजलि द्वारा बताई गई योग साधनाओं को ही अनुभवी योगियों ने राजयोग साधना का नाम दिया है।

स्वामी विवेकानन्द ने महर्षि पंतजलि के अष्टांग योग को ही राजयोग कहा है।

अष्टांग योग साधना के आठ अंग है– **1**. यम **2.** नियम **3.** आसन **4.** प्राणायाम **5.** प्रत्याहार **6.** धारणा **7.** ध्यान और **8.** समाधि।

प्रारम्भ के पाँच अंग बहिरंग योग कहलाते है जबकि अन्तिम तीन अंग (धारणा, ध्यान और समाधि) अन्तरंग योग। कुछ विद्वानो के अनुसार राजयोग साधना के अंग अन्तिम तीन धारणा ध्यान एवं समाधि ही है इन तीनों को एकत्रित रूप में पंतजलि ने 'संयम' कहा है–

त्रयमेकत्र संयमः। (योग सूत्र 3/4)

राजयोग साधना को अष्टांग योग, अन्तरंग योग, ध्यान योग, समाधि योग आदि अनेक नामों से जाना जाता है।

राजयोग साधना के अधिकारीः–

राजयोग साधना में उत्तम, मध्यम एवं अधम तीन तरह के साधक कहे गये हैं। और उनकी पात्रता के अनुसार ही साधना की विधि वर्णित है।

उत्तम कोटि के श्रेष्ठ साधकों के लिए अभ्यास और वैराग्य तथा ईश्वर प्रणिधान की साधना बताई गयी है।

अभ्यास वैराग्याभ्याम् तन्निरोधः। (योग सूत्र 1/12)

उच्च कोटि के साधक केवल ईश्वर प्रणिधान से भी समाधि को प्राप्त कर सकते है।

समाधिसिद्धिः ईश्वर प्रणिधानात्। (योग सूत्र 2/45)

मध्यम कोटि के साधकों के लिए 'क्रिया योग' है, जिसके तीन अंग है तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान।

तपः स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधानानि क्रिया योगः। (योग सूत्र 2/1)

अधम या निम्न स्तरीय प्रारम्भिक साधकों के लिए अष्टांग योग साधना करनी आवश्यक है जिसके आठ अंग है।

1. **यम–** अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रहमचर्य और अपरिग्रह का पालन करना यम है।

2. **नियम–** शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, और ईश्वर प्रणिधान का पालन करना नियम है।

3. **आसन–** यह शरीर का संयम है।

4. **प्राणायाम–** यह प्राणवायु का संयम है।

5. **प्रत्याहार–** यह इन्द्रियों का संयम है।

6. **धारणा–** यह मन का संयम है।

7. **ध्यान –** मन की एकाग्रवस्था है।

8. **समाधि–** यह योग की अंतिम अवस्था है जिसकी पराकाष्ठा में कैवल्य की प्राप्ति हो जाती है।

20.4.6 अष्टांग योग साधना

20.4.7 क्रिया योग साधना

20.4.8 अभ्यास एवं वैराग्य साधनाः–

उपर्युक्त साधनाओं के विस्तृत अध्ययन के लिए विद्यार्थी कृपया अपने इसी प्रश्नपत्र के इकाई संख्या 13 (समाधि) के अन्तर्गत पातंजल योग साधना (13.3.8) को देखें।

महर्षि पंतजलि के योग सूत्र में वर्णित उपर्युक्त साधनाएं चित्त वृत्तियों के निरोध द्वारा कैवल्य प्राप्ति के श्रेष्ठ उपाय हैं। प्रारम्भिक साधक के लिए अष्टांग योग है। जिसे राजयोग भी कहा गया है। मध्यम साधक के लिए क्रियायोग तथा उत्तम कोटि के समाहित चित्त वाले उच्च स्तरीय साधक के लिए अभ्यास वैराग्य की साधना बताई गयी है। इन साधना मार्गो पर चलने से चित्त की सम्पूर्ण वृत्तियाँ निरूद्ध हो जाती है तथा आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है जो कि कैवल्य की अवस्था है। इन साधनाओं का विस्तृत वर्णन इसी प्रश्न पत्र के इकाई संख्या 13 (समाधि) में समाधि प्राप्ति के विविध साधनों के अन्तर्गत किया जा चुका है जिसका अध्ययन विद्यार्थी कर चूके हैं। अतः यहाँ पुनरावृत्ति से बचते हुए विद्यार्थियों से अनुरोध है कि कृपया इकाई संख्या 13 का पुनः अवलोकन करने का कष्ट करें।

इस प्रकार कैवल्य प्राप्ति के अनेकों उपाय हैं जिसे अपनाकर मुक्ति, मोक्ष या कैवल्य की अवस्था को प्राप्त किया जा सकता है। यह कोई नई चीज नहीं अपितु अपने वास्तविक स्वरूप का ही बोध, अनुभव या साक्षात्कार है।

20.4.9 कैवल्य सिद्धान्त एवं इसके साधनों की समीक्षा

चार्वाक दर्शन को छोडकर शेष सभी भारतीय दर्शनो में जीवन का अंतिम लक्ष्य, परम पुरुषार्थ–मोक्ष को माना गया है जिसे मुक्ति, कैवल्य, अपवर्ग, निर्वाण, निःश्रेयस आदि अनेक समानार्थी शब्दो से सम्बोधित किया गया है। दार्शनिक दृष्टिकोण में भिन्नता के आधार पर कैवल्य के स्वरूप में भी भिन्नता है। न्याय– वैशेषिक एवं मीमांसा दर्शन आत्मा को स्वभावतः अचेतन मानते हैं। इसलिए इन दर्शनों में मोक्ष की अवस्था में आत्मा अचेतन हो जाती है। इसीलिए ये तीनो दर्शन जीवन्मुक्ति को भी नहीं मानते, केवल विदेह मुक्ति को ही मानते हैं। सांख्य–योग दर्शन में आत्मा यानी पुरुष को चैतन्य स्वरूप माना गया है इसलिए इनके अनुसार कैवल्य की अवस्था में आत्मा विशुद्ध चैतन्य स्वरूप होती है किन्तु उसमें आनन्द का अभाव होता है क्योंकि आनन्द सत्वगुण का परिणाम है और आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप में त्रिगुणातीत है इसलिए वह मोक्ष (या कैवल्य) की अवस्था सुख दुख के साथ साथ आनन्द से भी रहित मानते है। सांख्य की इस विचार धारा से हटकर अद्वैत वेदान्त आनन्द को आत्मा का स्वरूप बताता है। आत्मा ब्रह्म स्वरूप है और ब्रह्म सत् चित् आनन्द स्वरूप है इसलिए मोक्ष की अवस्था आनन्द से युक्त है। वेदान्त आनन्द को सतोगुण का परिणाम नहीं मानता बल्कि आत्मा का स्वरूप मानता है। सांख्य योग और अद्वैत वेदान्त में जीवन्मुक्ति और विदेह मुक्ति दोनों को स्वीकार किया गया है। शरीर रहते अविद्या के नाश होने पर विवेक ज्ञान के द्वारा मोक्ष या कैवल्य की प्राप्ति हो जाती है, यह जीवन्मुक्ति है तथा शरीर पात (मृत्यु) होने पर विदेह मुक्ति की प्राप्ति होती है। अद्वैत वेदान्त में आत्मा मोक्षावस्था में ब्रह्म में लीन हो जाती है जबकि अन्य मोक्षवादी दर्शनों में आत्मा मोक्ष के बाद अपने वास्तविक स्वरूप में प्रतिष्ठित अपना अलग अस्तिव बनाये रखती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि न्याय, वैशेषिक एवं मींमांसा दर्शन आत्मा व मोक्ष को सत् मानते है, चित् (चेतन अवस्था) और आनन्द नहीं। सांख्य–योग दर्शन सत् के साथ चित् भी मानते हैं किन्तु आनन्द स्वरूप नहीं मानते जबकि वेदान्त दर्शन सत् और चित् के साथ आनन्द को मानकर मोक्ष (कैवल्य) विचार में पूर्णता ला देता है। वास्तव में आनन्द से रहित अवस्था की प्राप्ति कौन चाहेगा?

कैवल्य के सम्बन्ध में उपर्युक्त मतभेद के होते हुए भी जो बाते सभी मोक्षवादी दर्शनों में समान रूप से मिलती है वे है–

1. मोक्ष या कैवल्य दुखों से आत्यन्तिक निवृत्ति की अवस्था है।
2. दुख एवं बन्धन का कारण अज्ञान है इसलिए कैवल्य की प्राप्ति ज्ञान से होती है।
3. कैवल्य या मुक्ति की अवस्था में आत्मा या पुरुष अपने वास्तविक स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है।
4. कैवल्य या मोक्ष के बाद पुनर्जन्म नहीं होता।
5. योगाभ्यास–साधना के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति की जा सकती है।

मोक्ष या कैवल्य की प्राप्ति के जितने भी उपाय (साधन) हैं उनमें महर्षि पंतजलि का अष्टांग योग विशेष महत्त्वपूर्ण है। क्योकि इसके आठो अंग व्यक्तिगत उत्कर्ष के साथ साथ

सामाजिक उत्कर्ष में भी सहायक है। पंतजलि के अष्टांग योग का प्रभाव प्रत्येक साधना प्रणाली पर परलक्षित होता है।

नास्तिक दर्शन कहे जाने वाले बौद्ध एवं जैन दर्शनों के मोक्ष मार्ग भी अष्टांग योग से प्रभावित हैं। **बौद्ध दर्शन** में निर्वाण प्राप्ति हेतु अष्टांगिक मार्ग की विवेचना है जिसके अन्तर्गत सम्यक्– दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाक्, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि की गणना की जाती है जिस पर अष्टांग योग के सदाचार (यम नियम) और ध्यान समाधि का स्पष्ट प्रभाव है। इसी प्रकार **जैन दर्शन** में मुक्ति हेतु पंचमहाब्रतों के पालन पर जोर दिया गया है। ये पंचमहाब्रत अष्टांग योग में यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रहमचर्य) कहलाते है।

जितने भी योग मार्ग हैं सभी में दुखों से मुक्ति (मोक्ष) हेतु सदाचार का पालन पहली शर्त है।

आज के परिवेश में जितनी भी समस्याएं है उनमें से अधिकांश सदाचार की उपेक्षा का ही परिणाम है। चोरी, डकैती, हिंसा, व्यभिचार, आये दिन हो रही बलात्कार की घटनाएं, भ्रष्टाचार आदि समस्याओं के जड़ में सदाचार का अभाव ही है।

हमारे भूतपूर्व प्रधानमन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी अपनी कविता में कहते है कि–

छोटे मन से कोई बड़ा नहीं होता।

टूटे मन से कोई खड़ा नहीं होता।

अटल जी की यह कविता दार्शनिक संकेतों वाली है। जब तक हमारा आदर्श बड़ा नहीं होगा हमारी सोच हमारा लक्ष्य ऊँचा नहीं होगा हम बड़ा (महान) नहीं बन सकते। कैवल्य या मोक्ष का महान आदर्श अपनाकर ही व्यक्ति का मन और कर्म बड़ा हो सकता है और समाज में सदाचार को प्रश्रय मिल सकता है। इस रूप में योग साधनाएं व्यक्तिगत के साथ साथ सामाजिक उन्नति में भी सहायक होने से प्रासंगिक है।

अभ्यास प्रश्नः–

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

(क) मनुष्य के अपने निजी शरीर एवं मन के कारण उत्पन्न दुख को......................... दुख कहते हैं।

(ख) आत्यन्तिको दुखत्रयाभावः.. ।

(ग) शम...का संयम कहलाता है।

(घ) निर्लिप्तता की प्राप्ति...................................से होती है।

(ङ) घेरण्ड संहिता में हठयोग के..अंग बताये गये हैं।

2. सत्य/असत्य बताइयेः–

(क) जीवन् कैवल्य, विदेह कैवल्य की पूर्व अवस्था है।

(ख) समाधि की प्राप्ति कैवल्य के बाद होती है।

(ग) गीता में कर्म सन्यास से कर्म योग को श्रेष्ठ माना गया है।

(घ) पर वैराग्य से निर्बीज समाधि की सिद्धि होती है।

(ङ) सत्य का पालन नियम है।

3 संक्षिप्त अन्तर बताइयेः—

(क) मोक्ष (अद्वैतवेदान्त) अपवर्ग (सांख्य)।

(ख) भक्तियोग एवं ज्ञान योग

(ग) अष्टांग योग एवं क्रियायोग

(घ) हेय, हेतु, हान एवं हानोपाय

(ङ) न्याय दर्शन में अपवर्ग एवं सांख्य दर्शन में अपवर्ग।

4. अतिलघुत्तरीय प्रश्नः—

(क) कैवल्य सुख की अवस्था क्यों नहीं है?

(ख) षड् दर्शनों मे से कौन कौन दर्शन जीवन्मुक्ति को नहीं मानते?

(ग) साधन चतुष्टय कौन—कौन से है?

(घ) त्रिविध दुखों के नाम बताइये।

(ङ) हठयोग के चार अंग कौन कौन से हैं?

20.5 सारांश

पुरुष (आत्मा) का अपने वास्तविक स्वरूप में अवस्थिति ही कैवल्य है जिसे मोक्ष, मुक्ति, निर्वाण, अपवर्ग, निःश्रेयस आदि कई नामों से भारतीय दर्शन में सम्बोधित करते हुए जीवन का चरम लक्ष्य बताया गया है। यही परम पुरुषार्थ है।

यह दुखों से आत्यन्तिक निवृत्ति की अवस्था है। दुख का कारण अज्ञान है। अज्ञान वश पुरुष प्रकृति (मन, बुद्धि, अंहकार) को अपना स्वरूप समझ उसके गुणों से प्रभावित हो सुख दुख भोगता रहता और बन्धनग्रस्त हो जन्म—मरण के चक्र में घूमता रहता है। मोक्ष इसी अविद्या (अज्ञान) से मुक्ति की अवस्था है जिसकी प्राप्ति ज्ञान या विवेक से सम्भव मानी गई है। इस विवेक ज्ञान की प्राप्ति या कैवल्य की प्राप्ति के लिए ज्ञान योग, कर्म योग, भक्ति योग, राजयोग, अष्टांग योग आदि अनेक प्रकार के साधना मार्ग बताये गये हैं जिन पर चलने से चित्त की वृत्तियाँ निरूद्ध हो जाती हैं। मन चित्त आदि के शुद्ध निर्मल होकर होने पर पुरुष समाधि की अवस्था में आत्म साक्षात्कार प्राप्त कर अपने वास्तविक रूप को जान जाता है। यही कैवल्य है, जो इसी जीवन में सम्भव होने पर जीवन कैवल्य कहलाता है तथा शरीर छूट जाने पर मृत्यु उपरान्त विदेह कैवल्य होता है, जहाँ से पुनर्जन्म नहीं होता।

20.6 शब्दावली

सम्प्रत्यय	–	विचार
निवृत्त	–	छुटकारा
विश्लेषण	–	विवेचना
अवगत्	–	जानना
आत्यन्तिक	–	पूर्ण रूप से
अनात्म	–	जो आत्मा नही है, अचेतन तत्व
ह्रास	–	कमी
तथागत	–	जो वास्तविक सत्य को जानता हो
वीर्य	–	शक्ति
विदेह	–	बिना देह का
मुमुक्षु	–	मोक्ष प्राप्त करने का इच्छुक व्यक्ति
भार्या	–	पत्नी
उत्कर्ष	–	उन्नति
अविनाशी	–	जिसका नाश सम्भव न हो
अजर	–	जो बूढ़ा न हो
युक्त	–	सहित
परे	–	अलग
सम्यक्	–	सही–सही
बोध	–	ज्ञान, अनुभव

प्रारब्ध– पहले से किये हुए वे कर्म जिनका फल मिलना शुरू हो गया हो अर्थात् पूर्व कृत कर्मों के फल

20.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. (क) आध्यात्मिक **(ख)** कैवल्यम् **(ग)** मन **(घ)** समाधि **(ड़)** सात।

2. (क) सत्य **(ख)** असत्य **(ग)** सत्य **(घ)** सत्य **(ड़)** असत्य

3. (क) अद्वैत वेदान्त में मोक्ष आनन्द की अवस्था है जबकि साख्य दर्शन अपवर्ग को आनन्द रहित मानता है। वह आनन्द को सतोगुण का फल मानता है और पुरुष त्रिगुणातीत होने से आनन्द से रहित स्वरूप वाला है।

(ख) भक्तियोग भाव प्रधान साधना है जबकि ज्ञान योग बुद्धि प्रधान साधना।

(ग) अष्टांग योग प्रारम्भिक साधकों के लिए है जबकि क्रिया योग मध्यम श्रेणी के साधकों के लिए होता है।

(घ) हेय का अर्थ है दुख या संसार

हेतु का अर्थ है दुख का कारण अर्थात् अविद्या

हानं का अर्थ है दुख से मुक्ति अर्थात् कैवल्य

हानोपाय का अर्थ है कैवल्य का उपाय अर्थात् विवेकख्याति

(ङ) न्याय दर्शन के अपवर्ग में आत्मा अचेतन हो जाती है (क्योंकि यही उसका वास्तविक स्वरूप है) जबकि सांख्य दर्शन में वह चेतन बनी रहती है। क्योंकि पुरुष चैतन्य स्वरूप है।

4. **(क)** क्योंकि सुख सतोगुण का परिणाम है और कैवल्य त्रिगुणातीत अवस्था है।

(ख) भारतीय षड्दर्शनों में न्याय–वैशेषिक एवं मीमांसा दर्शन जीवन मुक्ति को नहीं मानते। ये केवल विदेह मुक्ति ही स्वीकार करते हैं।

(ग) विवेक वैराग्य षड्सम्पत्ति और मुमुक्षुत्व को साधन चतुष्टय कहते हैं।

(घ) आध्यात्मिक दुख, आधिभौतिक दुख एवं आधिदैविक दुख को त्रिविध दुख कहते हैं।

(ङ) हठयोग के चार अंग हैं– आसन, प्राणायाम, मुद्रा एवं बन्ध तथा नादानुसंधान।

20.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. महर्षि पंतजलि– योग दर्शन – गीता प्रेस गोरखपुर।

2. ईश्वर कृष्ण– सांख्य कारिका– नेशनल पब्लिसिंग हाउस, दिल्ली।

3. राधा कृष्णन सर्वपल्ली– भारतीय दर्शन।

4. सरस्वती, स्वामी विज्ञानानन्द– योग विज्ञान– योग निकेतन ट्रस्ट टिहरी गढ़वाल।

5. कल्याण, योगाङ्क– गीताप्रेस गोरखपुर।

6. कल्याण–साधना अंक– गीताप्रेस गोरखपुर।

7. निगम डॉ॰ शोभा– भारतीय दर्शन– मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली।

8. पाठक राममूर्ति– भारतीय दर्शन का समीक्षात्मक रूपरेखा– अभिमन्यु प्रकाशन इलाहाबाद।

9. सिन्हा डॉ॰ हरेन्द्र प्रसाद– भारतीय दर्शन की रूपरेखा– मोतीलाल बनारसी दास दिल्ली।

10. उपाध्याय, बलदेव– भारतीय दर्शन–शारदा मंदिर, वाराणसी।

11. तीर्थ, स्वामी ओमानन्द– पांतजल योग प्रदीप–गीताप्रेस, गोरखपुर।

12. शर्मा, आचार्य श्री राम–साधना से सिद्धि–अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा।

20.10 निबंधात्मक प्रश्नः–

1. कैवल्य से आप क्या समझते है, व्याख्या करें।
2. योग दर्शन के अनुसार कैवल्य के स्वरूप ही विवेचना कीजिए।
3. सांख्य दर्शन में दुख क्या है? इससे मुक्ति कैसे सम्भव है?
4. जीवन मुक्ति एवं विदेह मुक्ति में अन्तर स्पष्ट कीजिए?
5. महर्षि पंतजलि ने कैवल्य प्राप्ति के कौन–कौन से उपाय बताये हैं? किसी एक का वर्णन करें।
6. अष्टांग योग क्या है? इसके महत्त्व को रेखांकित कीजिए।
7. क्रिया–योग से कैवल्य की प्राप्ति किस प्रकार सम्भव है? समझाइय